नामाबर

अपनी उनकी सबकी बात

अगस्त 2019 **नई दिल्ली**

सबकी बात	उनकी बात	आपकी बात
असम के मिया कवियों की 11 कविताएं	पीटीएसडीः एक अदृश्य तबाही	एक मां के नाम बेटे का ख़त
कश्मीरी कवि निदा नवाज़ की 11 कविताएं	कैद में छप्पन दिन	जो कभी पहुंचा ही नहीं

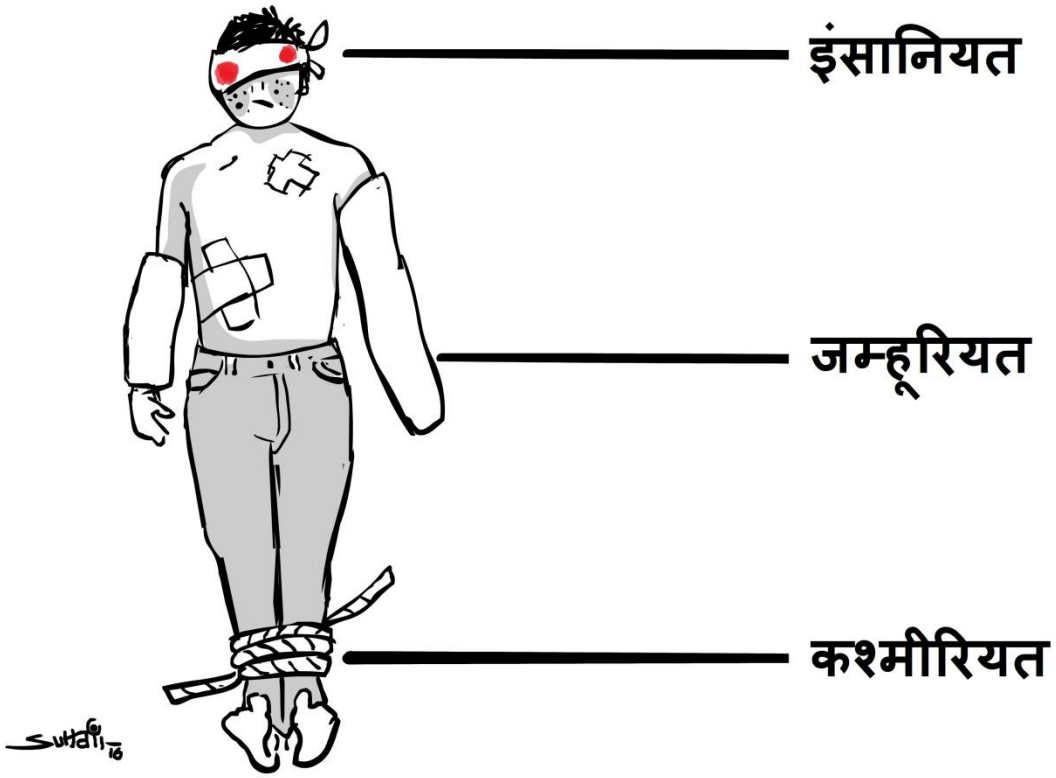

सबकी बात

मिया कविता: मनुष्यता का प्रस्ताव

अराजनीतिक होने के, राजनीतिक होने की तरह ही, नितांत अपने खतरे हैं और उन ख़ास खतरों को न उठाना राजनीतिक होना है इसलिए अगर अराजनीतिक दिखने के खतरे उठाते हुए कहा जाए तो भी मिया कविता एक आन्दोलन है. हकीकी 'फेनोमिना'. सोचना यह है कि इस पर बात शुरु की जाए तो किस सिरे से शुरु की जाए. भौगोलिक? भाषिक? मानवीय? राष्ट्रीय? अंतरराष्ट्रीय? हर शब्द यहाँ इस मिया कविता के सिलसिले में एक उलझा सिरा है. और यह भी कि इसे मिया कविता ही क्यों कहा गया है?

राष्ट्रीय सन्दर्भ से समझा जाए तो यह सन्दर्भ 'मिया कविता आन्दोलन' की मियाद शायद न बता पाए, लेकिन यह जरुर बतायेगा कि यह कविता आन्दोलन, जो 2016 से शुरु हुआ और जिसके रेशे खबीर अहमद की 1958 की कविता 'सविनय निवेदन है कि' में दिख जाते हैं, इन दिनों चर्चा में क्यों है. यह नागरिकता तय होने का दौर है.

मानवीय पहलू की माने तब शायद यह पहला कविता आन्दोलन है जो अपने जरिए अपनी भाषा को सामने लाता है जो अब तक राष्ट्रवाद के बहुरूपों में दबी थी. यह कविता आन्दोलन उन लोगों के अथाह दुःख को सामने लाता है जिन पर करीब सौ वर्षों से दोयम दर्जे की पहचान थोप दी गई है.इस प्रक्रिया मेंशासकीय मशीनरी ने उनका ही साथ दिया जो सत्ताधारी थे शक्तिशाली थे, जिनने यह पैमाने गढ़े कि 1900 से 1910 के बीच यहाँ ब्रह्मपुत्र के दियारों, चरों और चापोरियों, नलबारी और ग्वाल्पुरा जिले में बसे लोग मनुष्य कम बंगाली मुसलमान अधिक हैं, मनुष्य कम परुआ मुसलमान अधिक हैं, चरुआ मुसलमान अधिक हैं, और तो और, जो सहृदय थे उन्होंने भी इन्हें नव-असमिया का ही दर्जा दिया, बसनहीं दिया तो असमिया का दर्जा नहीं दिया. यह हाल तब है जब ब्रह्मपुत्र की चर-चापोरी आबादी क्षेत्र के अधिकतम, लगभग सभी, बाशिंदों ने, जिन्हें इरादतन और शरारातन मिया कहा गया, 1951 की जनगणना में अपनी भाषा के बतौर असमिया ही दर्ज किया था. यह राज्य और उसकी भाषा, उसकी संस्कृति के लिए अपनी एकनिष्ठा थी.

सन 1900 से 1910 के बीच और उसके आगे भी पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) से करीबन १५ लाख लोगों ने ब्रह्मपुत्र के इन चरों-चापोरियों को अपना ठीहा बनाया. कुछ तो इसलिए पलायन कर गए क्योंकि जमीदारों के जुल्म नाकाबिले-बर्दाश्त हो रहे थे, दूसरे ब्रह्मपुत्र के वो इलाके, जो इस समय एन.आर.सी. की महिमा से चर्चा में हैं, जो नेल्ली नरसंहार, जिसमें महज कुछ घंटों में दो-सवा दो हजार लोग मौत के घाट उतार दिए गए थे, निर्जन वन-क्षेत्र थे, इन इलाकों में वो पन्द्रह लाख लोग फ़ैल गए. जंगलों को काटकर रहनवारी बनाई, खेत बनाए और बस गए. इनकी अपनी भाषा थी जो पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के म्येमेसिंधिया क्षेत्र की भाषा थी यहाँ आकर बोली में तब्दील हो गई. बोली से भाषा बनने की आसान प्रक्रिया को राष्ट्र-राज्य की आधुनिक प्रक्रिया ने बेहद जटिल और सत्ताकामी बना दिया है. अगर कोई बोली, जो कि भाषा ही है – हर बोली भाषा है, राष्ट्रीय पैमानों पर भाषा का दर्जा पाती है तो उसके पीछे अनेक राजनीतिक, सामजिक और भौगोलिक स्थितियां होती हैं, जिन्हें रचा जाता है.

और हर जगह लोग ऐसे ही बसते हैं. कहीं से आते हैं और जहाँ आते हैं वहीं के हो कर रह जाते हैं. यह सामाजिक-भौगोलिक बदलाव हर इलाके में देखे जा सकते हैं. यह मान लेना कि असम में इस चर-चापोरी आबादी के अलावा जितनी भी आबादी है सब शाश्वत ही असम के हैं जरा ज्यादती होगी.

तब के पूर्वी बंगाल से आये लोगों को मिया का नाम दिया गया जो यों तो उत्तर भारत में पुकारे जाने वाला शब्द मियाँ से ही था लेकिन इन दोनों के मानी अलग अलग थे. उत्तर भारत में मियाँ जहाँ एक सम्मानसूचक शब्द है, जो अमूमन अपने से बड़ों के लिए कई मर्तबा संबोधन भी होता है. असम में यह मियाँ अपना चन्द्रबिंदु खोकर महज मिया हो जाता है लेकिन अनेक अनर्थ ओढ़ लेता है. इस शब्द में जो अर्थ भरे गए उनमें हर तरह का अपमान शामिल था, उनमें प्रवासी होना भी शामिल था, उनमें गरीब होना भी शामिल था और मुसलमान होना तो खैर शामिल ही था. आलम यह है कि जो दूसरे क्षेत्रों के मुसलमान हैं वो बात बेबात अपना नाता असम से जोड़ने से नहीं चूकते और चर-चापोरी के इन मुसलमानों को यह एहसास भी दिलाते रहते हैं कि ये लोग मिया है. आलम यह है कि जातिसूचक गालियों की तरह मिया भी उस इलाके में एक गाली की तरह प्रयोग होने लगा था. हिंसा सबसे पहले भाषा में होती है और यही वहाँ भी हुआ.

पीढ़ियों तक हुआ. बीस वर्षों की एक पीढी माने तो यह छठी पीढी होगी जिसे मिया शब्द बतौर अपमान सुनना पड़ता होगा, अगर सुनना पड़ता होगा.

इस तरह उनकी बोली का नाम मिया बोली पडा. जिसे साफ़ सुथरे दिखावे वाले हलके में चर-चापोरी बोली का नाम भी दिया गया. बहस इस पर भी है कि मिया बोली को बांग्ला से जोड़ना कितना उचित है. वह जितनी असमिया से जुडी है उतनी ही बांग्ला से. यह भी कि इन इलाकों के बच्चे, कई पीढ़ियों से, असमिया भाषा में शिक्षित दीक्षित हो रहे हैं, असमिया पर उनकी रवानगी है और मिया-बोली अपने इलाके तक ही सीमित हो कर रह गई है.

उस इलाके में बेइंतिहा गरीबी का आलम है. अच्छा भला पढता लिखता कोई युवक अगले ही दिन उन चौराहों पर खड़ा मिलता है जहाँ मजदूर जमा होते हैं, अमीर-उमरां या उनके नुमाईंदे जहाँ से मजदूर चुन कर ले जाते हैं. वहाँ से चलते ही इनका नाम धरा रह जाता है और ये महज मिया बन कर रह जाते हैं.

यह सोचते हुए और इसकी दरयाफ्त करते हुए कि इस कविता आन्दोलन को 'मिया कविता आन्दोलन' का नाम क्यों दिया होगा, बार बार यह ख्याल आ रहा था कि ग़ालिब का वह मिसरा कहीं सच न साबित हो जाए: दर्द का हद से बढ़ना है दवा हो जाना. लेकिन वही हुआ. वैसे शालिम एम् हुसैन ने अपने एक सुचिंतित आलेख में बेहतरीन तर्क रखे हैं. उनका कहना है कि 'मिया-बोली' बोली होने के नाते उन पाबंदियों से बची हुई है जो भाषाओं पर संस्थाएं और व्याकरण थोपते हैं. इस नाते वे मिया बोली में सटीक लिख पाते हैं. दूसरे, ऐसा मेरा मानना है कि, वो जो चर-चापोरी जनों के दुःख हैं वो इस कदर 'यूनिक' हैं कि उनकी ही बोली या भाषा में लिखे जा सकते हैं.

मिया कविता के सिरे वो 1939 में छपी एक कविता में तलाशते हैं. वह बन्दे अली की कविता है: एक चरुआ का प्रस्ताव. वह कविता हालांकि सहमेल की बात पर जोर देती है लेकिन जोर देने के अंदाज से

जाहिर है कि कुछ है जो गड़बड़ है, जिसे कवि इशारों में बताना चाहता है. राष्ट्रवाद का डर और भाषावाद का डर कई बार लेखकों को अपना शिल्प, अपना 'अप्रोच' बदलने पर मजबूर कर देता है, अगर वो लेखक विषय नहीं बदलना चाहता है तो, वरना तो भाषाई उन्माद कई बार विषय भी निर्धारित कर देता है. कविता का एक अंश देखें:

मेरे अब्बाजान मेरी आई और न जाने कितने बन्धु-भाई

अपना घर छोड़ चुके थे, बे-मुल्क हो चुके थे

तब कितने लोग इस मुल्क से बावस्ता थे

जो पहने हुए हैं आज ताज और लगाए घूमते हैं नेताओं के से नकाब?

ये लोग लालच से घिरे हुए हैं, मैं जानता हूँ

लालच ने जो भाषा अख्तियार कर रखा है उसे मैं चुपचाप परख रहा हूँ.

लेकिन मैं उस थाली में छेद नहीं करूंगा जिसमें खाता हूँ

मेरा ईमान यह मुझे करने नहीं देगा.

मेरी यह सरजमीं जहाँ मेरा ठिकाना है

उसकी सलामती ही मेरा आनन्दोत्सव है

जिस जमीं से मेरी आई, अब्बाजान

जन्नत को कूच कर गए

वह जमीं मेरी अपनी है, आमार सोनार असम.

इस आबादी और इस बोली की कविता में दूसरा 'प्रस्थान' 1985 में मिलता है, जब खबीर अहमद 'सविनय निवेदन है कि' शीर्षक से कविता लिखते हैं. यह कविता बन्दे अली की कविता से कई मायनों में प्रस्थान दर्ज करती है. आवेदन पत्र के शिल्प में होते हुए भी यह कविता पर्याप्त सटायर से भरी है जो नागरिकों के नागरिक अधिकार कम होते जाने को दर्ज करती है. यह कविता असम आन्दोलन और असम अकोर्ड के पश्चात लिखी गई है.

सविनय निवेदन है कि

मैं बाशिंदा हूँ, एक मिया जिससे नफरत रखते हैं लोग

मुआमले कुछ भी हों, मेरे नाम यही होने हैं

इस्माईल शेख, रमजान अली या माजिद मिया

विषय: मैं हूँ असमिया इसी असम का

लेकिन मिया कविता आन्दोलन की शुरुआत वर्ष 2016 में हुई. वह भी फेसबुक पर लिखी गई एक कविता से हुई. खबीर अहमद के मित्र और शिक्षक डॉ. हफीज अहमद ने एक कविता पोस्ट की: 'लिखो कि'. हफीज की इस कविता में एन.आर.सी के बहाने बात थी. और पहली बार एक 'अशर्शन' था कि 'लिखो कि मैं एक मिया हूँ'. लोग अवाक रह गये. जैसे आप अपने ऊपर फेंके गए पत्थर को उठाते हों, उसकी गर्द साफ करते हों, क्या पता धुलते भी हों और उसे अपना कर नई पहचान देते हों, कुछ कुछ उसी तरह, पूरी तरह नहीं, डॉ. हफीज ने मिया शब्द को एक नया ही रूप दे दिया. अपनी पहचान बना दी.

लिख लो,

मैं एक मिया हूँ,

लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, गणतंत्र का नागरिक

जिसके पास कोई अधिकार तक नहीं,

मेरी माँ को संदेहास्पद-मतदाता** का तमगा मिल गया है,

जबकि उसके माँ-बाप सम्मानित भारतीय हैं,

उस कविता के पोस्ट करने के बाद करीबन बारह लोगों ने, किसी चेन रिएक्शन की तरह हफ्ते भीतर ही, कमेन्ट में और कमेन्ट के कमेन्ट में कविता लिखी. वही बारह लोग इस मिया कविता आन्दोलन की नींव हैं, जड़ हैं. इन सभी ने मिया पहचान दर्ज की. इन सब की कविता 'मिया कविता' कहलाई और और ये सभी 'मिया कवि' कहलाए.

इस प्रश्न पर, कि कहीं इसे असमिया से विद्रोह मान कर न देखा जाए, शलीम एम् हुसैन इसे सिरे से नकारते हुए लिखते हैं कि मामला ठीक इसके उलट है, मिया कविता असमिया पहचान को समृद्ध करेगी. वो ये भी बताते हैं कि 'प्रोजेक्ट इटामुगुर' में दर्ज सभी मिया कवितायें मानक असमिया भाषा में हैं.

ये कवि अपने को 'चर-चापोरी' कवि कहलाना भी नहीं चाहते. इनका सीधा सा तर्क है कि हम किसी भूगोल से बंध कर नए तरह की किसी साजिश या राजनीति का शिकार नहीं होना चाहते. हम 'मिया' है. जो लोग दबी छुपी जबान में भी हमें मिया कहते हैं उनके सामने हमारी पहचान हैं, हमारे दुःख है, हमारी कविता है. मिया पहचान को स्वीकारने से पाखण्ड ख़त्म होगा, पाखण्ड ख़त्म होगा तो संवाद शुरु होगा.

और संवाद अगर शुरु हो गया तब लोग, एक दूसरे को, स्वीकारेंगे.

(यहाँ प्रस्तुत बारह कविताओं के लिए यह अनुवादक, मिया कवि शालिम एम् हुसैन का ऋणी है. शालिम बेहद अच्छे कवि हैं और उनकी एक कविता 'नाना मैंने लिखा है' मिया कविता नामक इस पुस्तिका में संकलित भी है. दूसरे, शालिम द्वारा इन बारह कविताओं के मिया से अंगरेजी में अनुवाद करने कारण ही यह हिन्दी अनुवाद भी संभव हो सका है. लेकिन सबसे जरुरी बात यह कि शालिम ने मिया कविता के पक्ष में जो आलेख लिखा है वह किसी भी कविता आन्दोलन के लिए स्वप्न सरीखा घोषणापत्र है. अनुवादक की तमन्ना है कि किसी दिन उस अनकहे घोषणापत्र का भी अनुवाद करेगा.)

****
1

एक चरुआ का प्रस्ताव
बन्दे अली (1939 में लिखी कविता)

कोई कहता है बंगाल मेरा जन्मस्थान है

और गुस्से से भर कर घूरता है

ठीक है, जब वे आए,

मेरे अब्बाजान मेरी आई और न जाने कितने बन्धु-भाई

अपना घर छोड़ चुके थे, बे-मुल्क हो चुके थे

तब कितने लोग इस मुल्क से बावस्ता थे

जो पहने हुए हैं आज ताज और लगाए घूमते हैं नेताओं के से नकाब?

ये लोग लालच से घिरे हुए हैं, मैं जानता हूँ

लालच ने जो भाषा अख्तियार कर रखा है उसे मैं चुपचाप परख रहा हूँ.

लेकिन मैं उस थाली में छेद नहीं करूंगा जिसमें खाता हूँ

मेरा ईमान यह मुझे करने नहीं देगा.

मेरी यह सरजमीं जहाँ मेरा ठिकाना है

उसकी सलामती ही मेरा आनन्दोत्सव है

जिस जमीं से मेरी आई, अब्बाजान

जन्नत को कूच कर गए

वह जमीं मेरी अपनी है, आमार सोनार असम

यह धरती मेरा पवित्र इबादतगाह है

जिस जमीन की सफाई मैं अपना घर बनाने के लिए करता हूँ

वो मेरी अपनी धरती है

यह शब्द कुरआन से हैं

जिनमें झूठ की गुंजाईश भी नहीं

इस जगह के लोग सीधे हैं, साफ़ मन के हैं

असमिया हमारे अपने हैं

साझे हमारे घर में जो कुछ भी हमारा है हम उसमें साझा करेंगे

और एक स्वर्णिम भविष्य वाला परिवार बनेंगे.

मैं न तो चरुआ हूँ और न ही पमुआ*

हम सब अब असमिया ही हो गए हैं

असम की आबो-हवा, असम की भाषा के

हम भी हकदार हो गए हैं

अगर असमिया मरते हैं तो हम भी मरेंगे

लेकिन हम ऐसा होने ही क्यों देंगे

नए दारुण दुखों के लिए हम नए हथियार बनायेंगे

नए यंत्रों से हम बनायेंगे नया भविष्य

जहाँ मिले हमें इतना प्यार, इतना सम्मान

हमें कहाँ मिलेगी ऐसी जगह?

जहाँ हल के फाल से कटती हो धरती और उगता हो सोना

हमें कहाँ मिलेगी ऐसी वैभवशाली जगह?

असम-माँ हमें अपना दूध पर पालती है

हम उसके हुलसित संतान हैं

आओ सब एक धुन में गाएँ: हम असमिया हैं

हम म्यामेंसिंधिया नहीं बनंगे

हमें सीमाओं की जरुरत भी नहीं होगी

हम सब भाई की तरह रहेंगे

और जब दिकू लोग हमें लूटने आयेंगे

हम अपनी नंगी छातियों से उन्हें रोक लेंगे

चरुआ: चर इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए कहा जाना वाला एक शब्द

पमुआ: बाहर से आकर बसे बाशिंदे

यह कविता अपने मूल में ABAB की गेयात्मक शैली में दिखी गई है.

****

2

सविनय निवेदन है कि (1985)
खबीर अहमद

सविनय निवेदन है कि

मैं बाशिंदा हूँ, एक मिया जिससे नफरत रखते हैं लोग

मुआमले कुछ भी हों, मेरे नाम यही होने हैं

इस्माईल शेख, रमजान अली या माजिद मिया

विषय: मैं हूँ असमिया इसी असम का

कहने के लिए मेरे पास अकूत बातें हैं

असम की लोककथाओं से पुरानी कहानियाँ

आपकी शिराओं में उफनते खून से

भी पुरानी कहानियां

यौमे आजादी के चालीस बरस बाद भी

अपने प्रिय लेखकों के शब्दों में मेरे लिए जगह नहीं है

आपके आलेखकों का ब्रश मेरे चेहरे को छूने भर के लिए भी नहीं छूता

संसद और विधानसभाओं में मेरा नाम अनुच्चारित ही रह जाता है

किसी शहीद स्मारक पर भी नहीं, यहाँ तक कि छोटे छोटे अक्षरों में छपे

किसी समाचार-संसार में भी नहीं.

और तो और, आपने तो अभी यह भी नहीं तय किया है कि मुझे क्या कह कर बुलाना है-

क्या मैं मिया हूँ, असमिया हूँ या नव-असमिया?

फिर भी क्या गजब कि आप नदी की बात करते हो

कहते हो, यह नदी असम की माँ है

पेड़ों का जिक्र करते हो

बताते हो, असम नीली पहाड़ियों की धरती है

पेड़ों की तरह अडिग, मेरी रीढ़ मजबूत है

इन पेड़ों की छाया ही मेरा पता है ...

आप किसानों, कामगारों की बात करते हो

कहते हो, असम धान और परिश्रम की धरा है

जबकि मैं धान के समक्ष झुकता हूँ, पसीने के समक्ष भी

क्योंकि मैं किसान की संतान हूँ...

मैं विनम्र निवेदन करता हूँ कि मैं एक

प्रवासी बाशिंदा हूँ, मिया जिसे सब गंदा कहते हैं

मामला कोई भी क्यों न हो, मेरा नाम है

खबीर अहमद या मिजानुर मिया

और विषय वही – मैं असमिया हूँ इस असम का

बीती सदी में कभी खो दिया अपना

पता पद्मा के तूफानों में

किसी व्यापारी की जहाज ने मुझे भटकता पाकर यहाँ छोड़ दिया

तब से मैंने अपने सीने से लगाए रखा है, इस धरती को, इस सरजमीं को

और खोज की नई यात्रा शुरु की

सदिया से धुबरी तक ...

उस दिन से

मैंने इन लाल पहाड़ियों को समतल करने का काम किया है

जंगल काट कर शहर बसाए, मिट्टी को इंटे में ढाला

इंटों से स्मारक रचे

धरती पर पत्थर रखे, दलदली कोयले से अपनी पीठ जला ली,

तैर कर पार की नदियाँ, किनारों पर इन्तजार किया

और बाढ़ को रोके रखा

अपने खून और पसीने से खड़ी फसल को सींचा

और अपने अब्बा के हल से, धरती पर उकेरा

अ...स...म

आजादी का इन्तजार मैंने भी किया

नदी के नरकट में एक घोंसला बनाया

भातियाली में ग़ीत गाए

जब अब्बा मिलने आते,

लुईत का संगीत सुना

अक्सर शाम में कोलोंग और कोपली के किनारे पर खड़े रह कर

उनके किनारों की स्वर्णिम आभा देखा

अचानक एक रूखे हाथ ने मेरा चेहरा खरोंच दिया

'83 की एक धधकती हुई रात में

मेरा देश नेल्ली की काली भट्ठी पर खड़ा चीख रहा था

मुकाल्मुआ और रुपोही, जुरिया,

साया ढाका, पाखी ढाका के ऊपर बादलों ने भी आग पकड लिया था –

मिया लोगों के घर चिताओं की तरह जल रहे थे

'84 की बाढ़ हमारी फसल बहा ले गई

85' में चंद जुआरियों के हुजूम ने हमें विधानसभा

में नीलाम कर दिया

खैर मामला जो भी बने, मेरा नाम रहेगा

इस्माईल शेख, रमजान अली या माजिद मिया

विषय भी लेकिन वही रहेगा– मैं असमिया हूँ इसी असम का.

****

3

एक चरुआ युवक बनाम लोग (2000)
हाफिज अहमद

मीलॉर्ड

हाँ, हम दोनों भाई हैं

वो और मैं

एक ही परिवार से जन्में भाई.

फिर भी बड़े को ऐसा भूत सवार है

राजा बनने का

कि वह इस खून के रिश्ते को भी

मानने से इनकार करता है.

मीलॉर्ड

उसके दावों से उलट

मैं उसका सौतेला भाई नहीं हूँ

माँ और बेटे तक तक अलग नहीं हुए थे

जब मैं पैदा हुआ

उसने दोस्तों और दुश्मनों की

कानाफुसियों को ज्यादा ही ध्यान से सुन लिया है

और अपना दिमाग खराब कर बैठा है.

यही वजह हो सकती है कि

आये दिन वो मुझे नाजायज घोषित करते रहता है.

मीलॉर्ड

अक्सरहा वो चुप मार जाता है

और उसका गुस्सा उन्मादी रूप धारण कर लेता है

कई बार अनुचित क्रोध के वशीभूत होकर

अपने शरीर से मांस का

लोथ नोच लेता है.

एक बार को भी उसे इसका ख्याल नहीं आता

क्यों आखिर हमारी छः बहनों

को घर छोड़ने

पर मजबूर होना पडा था

मीलॉर्ड

अब वह समझदार हो गया है

या कम से कम मेरा अनुमान यह कहता है

आपने हमारी समस्याओं का अध्ययन किया है

आपने देखा है कि हमारे अपने ही अपनी माँ के ह्रदय

सरीखी चिता पर जलाए जा रहे हैं

हमारे अपने ही हमारे अपनों को

खाए जा रहे हैं

मीलॉर्ड

कैसे मैं शान्ति का जल उड़ेलूँ ?

कैसे मैं दक्ष के यज्ञ को रोकूँ?

कैसे मैं सती हो चुके शरीर

के टुकड़ों को सम्भालूँ?

****

4

आह!

हफीज अहमद

(ब्रह्मपुत्र के कटाव में सब कुछ गँवा चुकने के बाद)

क्या नहीं था अपने पास?

धान से हरिआये खेत,

तालाबों में तैरती मछलियाँ,

बच्चों की हँसी पर थमा घर,

नारियल और कसैली के पेड़ों की कतारों पर कतारें

त्यौहार पर लोगों से

उनकी खुशियों से भरा हुआ आँगन.

क्या है आज अपने पास?

अपने गले में पड़ी गुलामीं की जंजीरें

और जीतने के लिए यह जग सारा.

****

5

लिखो कि 'मैं एक मिया हूँ'
हाफिज अहमद

लिखो

दर्ज करो कि

मैं मिया हूँ

नाराज* रजिस्टर ने मुझे 200543 नाम की क्रमसंख्या बख्शी है

मेरी दो संतानें हैं

जो अगली गर्मियों तक

तीन हो जाएंगी,

क्या तुम उससे भी उसी शिद्दत से नफरत करोगे

जैसी मुझसे करते हो?

लिखो ना

मैं मिया हूँ

तुम्हारी भूख मिटे इसलिए

मैंने निर्जन और नशाबी इलाकों को

धान के लहलहाते खेतों में तब्दील किया,

मैं ईंट ढोता हूँ जिससे

तुम्हारी अटारियाँ खड़ी होती हैं,

तुम्हें आराम पहुँचे इसलिए

तुम्हारी कार चलाता हूँ,

तुम्हारी सेहत सलामत रहे इसलिए

तुम्हारे नाले साफ करता हूँ,

हर पल तुम्हारी चाकरी में लगा हूँ

और तुम हो कि तुम्हें इत्मिनान ही नहीं!

लिख लो,

मैं एक मिया हूँ,

लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, गणतंत्र का नागरिक

जिसके पास कोई अधिकार तक नहीं,

मेरी माँ को संदेहास्पद-मतदाता** का तमगा मिल गया है,

जबकि उसके माँ-बाप सम्मानित भारतीय हैं,

अपनी एक इच्छा-मात्र से तुम मेरी हत्या कर सकते हो, मुझे मेरे ही गाँव से निकाला दे सकते हो,

मेरी शस्य-स्यामला जमीन छीन सकते हो,

बिना किसी सजा के तुम्हारी गोलियाँ,

मेरा सीना छलनी कर सकती हैं.

यह भी दर्ज कर लो

मैं वही मिया हूँ

ब्रह्मपुत्र के किनारे बसा हुआ दरकिनार

तुम्हारी यातनाओं को जज्ब करने से

मेरा शरीर काला पड़ गया है,

मेरी आँखें अंगारों से लाल हो गई हैं.

सावधान!

गुस्से के अलावा मेरे पास कुछ भी नहीं

दूर रहो

वरना

भस्म हो जाओगे।

*नाराज रजिस्टर: नागरिकों की राष्ट्रीय जनगणना रजिस्टर

** संदेहास्पद मतदाता: डी वोटर

****

6

नाना मैंने लिखा है
शालिम एम हुसैन

नाना मैंने लिखा है, गवाही दी है, तस्दीकी दस्तखत किए हैं

और रजिस्ट्री के कागजों पर सत्यापित किया गया हूँ कि

मैं एक मिया हूँ

देखो अब मेरी उठान

बढ़ियाई नदियों से

भूस्खलनों पर मेरा तिरना

बालू और दलदल और साँपों के बीच मेरा कदमताल

धरती का घमंड चूर चूर करते हुए कुदाल से खोदना एक खाई

घिसटना धान और हैजा और गन्ने के खेतों से

दस प्रतिशत की साक्षरता दर लिए

देखो मेरा कंधे उचकाते और जुल्फें संवारते हुए

दो काव्य पंक्तियों के साथ गणित का एक सूत्र समझते हुए

दबंगों द्वारा मुझे बांग्लादेशी कहे जाते समय भौचक्का होते हुए

और अपने इंकलाबी दिल को यह बताते हुए कि

लेकिन मैं तो मिया हूँ

देखो मुझे अपने सीने से लगाए संविधान के साथ

दिल्ली की ओर उंगली उठाए

अपनी संसद, अपनी उच्चतम अदालत अपने कनॉट प्लेस तक चहलकदमी करते हुए

और कहना उन सांसदों से माननीय न्यायाधीशों से अपने जादू में लपेट कर रोल-गोल्ड की अंगूठियाँ

बेचती उस स्त्री से कि

मैं एक मिया हूँ.

कोलकाता, नागपुर और सीमापुरी की मलिन बस्तियों में मुझसे मिलने आओ

देखो मुझे सिलिकॉन वैली में बसे हुए, मैक्दोनौल्ड्स में खपे हुए

खरीद-फरोख्त में गुलाम की तरह दुल्हन बने हुए- मेवात तक लाया जाते हुए

देखो मेरे बचपने पर चिपके हुए दाग

पी.एचडी की सनद के साथ मिले स्वर्ण पदक

और तब पुकारो मुझे सलमा बुलाओ मुझे अमन नाम दो मुझे अब्दुल कहो मुझे बहतों निसा

या फिर बुलाओ मुझे गुलाम.

देखो मुझे जहाज पकड़ते हुए वीजा लेते हुए बुलेट ट्रेन पर सवारी करते हुए

गोली खाते हुए

अपनी भटकन संभालते हुए

राकेट चलाते हुए

अंतरिक्ष में लूंगी पहनते हुए

और जहाँ कोई नहीं सुन सकता तुम्हारी चीख,

गरजो

मैं मिया हूँ

मुझे इस पर नाज है.

****

7

तो मैं अब भी एक मिया ही हूँ
शाहजहाँ अली अहमद

मेरी जो कहानी है वो

एक सुलगती हुई युवावस्था और घुटते सूरज की

मेरी जवानी सचेत करने वाली एक कथा है

झुके कन्धों की

और नमक बुझे काँटों के चुभने की

मेरी जो कहानी है उसमें

है 'अधिक अन्न उपजाओ', नरभक्षी

हैजा है, डायरिया है

और काँटों के इस जंगल में

मेरे पूर्वजों द्वारा बिखेरा गया सुवास का एक आन्दोलन है

मेरी कहानी नायकों की है.

मेरी कहानी सन '६१ की गांठों से फूटते रक्त की गूँज

और बलिदान की है

मेरी कहानी '83, 90-94, 2008, 2012, 2014 की है

मेरी कहानी है जुल्म की, कलंक की

प्र्ग्योतिश्पुर में द्राविडों के वंचित रह जाने की

मैं शर्मिंदगी का रंग हूँ

उसके कान पकडे हुए, घुटने झुकाए

जब राजा और रजवाड़े गुजर रहे थे

जोकर की टोपी के नीचे मैं ही था

गूंगे जानवरों की भांति कतारबद्ध

अस्तबल में टंगी हुई

मैं एक पुरानी पेंटिंग हूँ

क्योंकि बोतल भले ही अलग हो शराब वही है के तर्क से

अगर जन्म ही पहचानने का आख़िरी सलीका है,

तो मैं अब भी एक मिया ही हूँ.

****

8

हमारा इन्कलाब
रिजवान हुसैन

फटकारो हमें

मर्जी हो तो मार भी लो

सब्र का बाँध बांधें बनाते रहेंगे हम

तुम्हारे महले-दुमहले, सड़कें और पुल

सब्र के साथ खींचते रहेंगे तुम्हारे थके हुए, तुंदियल,

पसीनों से तरबतर तुम्हारे शरीर अपने रिक्शे पर

हम चमकाएंगे तुम्हारे संगमरमर के तल्ले

जब तक उनसे रौशनी न फूट पड़े

धोयेंगे तुम्हारे गंदे कपडे

जब तक कि वो उजले न हो जाएँ

ताजे फलों और सब्जियों से हम तुम्हें मांसल होने तक भरते रहेंगे

और जब तुम हमारे निरीक्षण के लिए तापजुली चर आओगे,

हम तुम्हें महज दूध ही नहीं

बल्कि ताजी मलाई भी परोसेंगे

तुम हमारा अपमान किये जा रहे हो

आज भी हम तुम्हारी आँखों के कांटे हैं

लेकिन क्या है वो कहावत: धैर्य का धैर्य एक दिन चुकता है

टूटे हुए घोंघे मांस में धँस सकते हैं

हम सब भी इंकलाबी बन सकते हैं

हमारा इन्कलाब बन्दूक के बल नहीं बढेगा

हमारा इन्कलाब डायनामाईट का मोहताज नहीं होगा

हमारा इन्कलाब दूरदर्शन पर नहीं दिख सकेगा

हमारा इन्कलाब प्रकाशित भी न हो सकेगा

हमारे इन्कलाब की तस्वीरें भी किसी दीवाल पर शायद न ही दिखें

लाल और नीले रंग की तनी हुई मुट्ठियों सा

फिर भी हमारा इन्कलाब झुलसा देगा, जला देगा

तुम्हारी आत्मा को ख़ाक में तब्दील कर देगा.

****

9

मिया कहलाना मेरे लिए अब अपमान नहीं
अब्दुर रहीम

मिया कहलाना अब मेरे लिए अपमान की बात नहीं

अपने परिचय में खुद को मिया कहते हुए

अब कोई शर्म नहीं

तुम मुझसे प्रेम कर सकते हो

तुम चाहो तो मुझसे नफ़रत भी कर सकते हो

न मैंने कुछ खोना है

न मैंने कुछ पाना

अपमानित करने के लिए मिया न कहो

अब

तुम मुझे प्यार कर सकते हो

तुम मुझसे नफ़रत भी कर सकते हो

लेकिन सरपरस्ती नहीं कर सकते

अपने अंकवार में भर सकते हो

लेकिन पीठ में छुरा अब नहीं मार सकते

अपमानित करने के लिए मिया न कहो

अब

तपती धूप से जली हुई मेरी पीठ को अब मत देखो

कि तुम्हे कंटीले तारों के दाग देखने है

लेकिन,

लेकिन ’83, ’94, ’12, ’14 को भूलना भी मत

साहिबान अब मेरी पीठ पर के जख्मों

को कटीले तारों के निशान कहना बंद करो अब

जैसे अपमानित करने के लिए मिया कहना बंद करो

अब

साहिबान बंद करो मेरा खून खींचकर उसकी

स्याही से राष्ट्रवाद के गीत लिखना

अपनी बात मेरे मुँह से कहलाना बंद करो अब

दूध के दांत तो कब के टूट चुके

मिया कह कर अपमानित करने का वक्त भी बीत गया

मिया कह कर अपना परिचय देना

नहीं है शर्म की बात

अब

****

10

आज मैं अपना नाम भी नहीं जानता
चान अली

नहीं जानता मैं आज अपना नाम

लापता: गुम हो चुका है वर्तनी के फेरों में, तानों में, उपहासों में

और तुम्हारी दफ्तरी कोठरियों, फाईलों, आलमारियों के दलदल में.

सुबह के वक्त पैदा होने से जो फज़्र अली था

वो कक्षा मॉनिटर होते समय फजल अली हो गया

मागुन गानों को गाते हुए वही फजल मिया कहलाया

और अंततः गौहाटी में बेनाम बांग्लादेशी मजदूर कहलाया

मैंने अनेक नाम पाए, अनेक जीवन जिया

लेकिन उनमें से अपना कोई नहीं.

मजदूर बाजार में दैनंदिन नीलामी के वक्त

मुझे वर्ग और वर्गमूल के सूत्र याद आया करते थे

मक्के के गट्ठर ढोते समय मागुन गान याद आते थे और वो मागुन मुझे राहत पहुंचाते थे

नजरबंदी के दौरानउन्कड़ू बैठे

मैंने यही सोचा-

क्या यह इमारत मैंने ही नहीं बनाई थी?

कुछ भी तो नहीं है अब मेरे तईं

सिवाय एक पुरानी लुंगी के, अधपकी दाढी के

और '66 वाली मतदाता' सूची की छायाप्रति के

जिस पर मेरे दादाजी का नाम लिखा है.

सही है कि आज मेरा कोई नाम नहीं है

लेकिन अपना दिया नाम मेरी नजरों के सामने न झुलाओ

मुझे बांग्लादेशी न बुलाओ

मुझे तुम्हारी बकवास की कोई जरुरत नहीं

'नव असमिया' का तमगा भी न थोपो

कुछ न दो

सिवाय उसके कि जो मेरा है

मैं एक नाम खुद के लिए तलाश लूंगा

और वो तुम्हारा दिया हुआ नहीं होगा.

****

11

मेरा बेटा शहरों वाली गालियाँ सीख गया है
सिराज खान

जब मैं चर से निकल कर शहर आता हूँ

वो पूछते हैं, 'अबे, तेरा घर किधर है?'

कैसे मैं कहूँ, 'बोरोगांग के हृदय-स्थल में,

सफेद रेत के बीच

झाऊ के सरकंडों में झूलते हुए

वहाँ जहाँ कोई सड़क नहीं जाती, कोई रथ नहीं जाता

जहाँ बड़े लोगों के पैर कभी नहीं पड़ते

जहाँ हवा घास सी हरी है,

वहीं, वहीं मेरा घर है.'

जब मैं चर से निकल कर शहर आता हूँ

वो पूछते हैं, 'अबे, तुम्हारी भाषा क्या है?'

जैसी पशुओं और पखेरुओं की होती है

कोई किताब नहीं है, मेरी भाषा का कोई विद्यालय नहीं है

माँ के मुख से कोई धुन चुराता हूँ और

भटियाली गाता हूँ. मैं तुक से तुक मिलाता हूँ

दर्द से दर्द

धरती की ध्वनियों को सीने से लगाये रखता हूँ

और बालू की सरसराहट में बोलता हूँ

धरती की भाषा हर जगह एक ही है.

वो पूछते हैं, 'अबे, तेरी जाति क्या है?'

कैसे मैं कहूं कि मनुष्य जाति का हूँ

कि हम लोग तब तक हिन्दू या मुसलमान हैं

जब तक धरती हमें एक नहीं कर देती

वो मुझे डराना चाहते हैं, 'ओये, कहाँ से आया है तू?'

मैं कहीं नहीं से आया हूँ

जब जब अब्बाजान जूट के बोझे सर पर उठाए

चर से निकल कर शहर गए

पुलिस वाले उन पर कूद पड़ते थे

और कागजातों की जाँच शुरु हुई

हर बार अब्बाजान पराक्रमी अंदाज में सफल रहे

सिर्फ इसलिए कि वो रेतीले क्षेत्र से आते थे

उन लोगों ने उन्हें रंग बिरंगे अनेकोनेक नाम दिए:

चोरुआ बुलाया, पमुआ, म्येमेंसिंघिया,

कुछ ने 'नव-असमिया' बुलाया

कुछ ने 'विदेशी मिया'

इन चक्कतों को अपने दिल ही दिले में लिए

वो अपनी कब्र तक गए

ये चक्कते एक साथ जमा हुए, अपना सहस्र फन फैलाया और मुझ पर फुफकारा.

ओ सपेरे बाबू मोशाय

कब तक लुढ़कते और रेंगते रहोगे

मेरा बेटा अब कॉलेज जाने लगा है

वह शहरों वाली गालियाँ सीख गया है

वह कम जानता है लेकिन खूब जानता है

कविता के मनोहारी घुमाव और सजीले ख़म.

****

प्रस्तुति, भूमिका, ग्यारह कविताओं का चयन और अनुवाद– चंदन पांडेय

अक्षर अक्षर रक्त भरा

कश्मीरी कवि निदा नवाज़ की ग्यारह कविताएं

*

अक्षर अक्षर रक्त भरा

हमारे अपमानित इतिहास के
हर काले पन्ने का
अक्षर अक्षर है
रक्त भरा।

*

एक बड़ा शोषण

हमें चुप्पी तोड़नी होगी
उन लोगों की
जो एक रेवड़ की भांति
हांक दिये जाते हैं
राजनीती से रंगी
साम्प्रदायिकता की लाठी से
समझोतों की चरागाहों की ओर
उन्हें दिये जाते हैं
धर्म नाम के ट्राकोलाज़र्स
लगातार, मुसलसल
और उतार दी जाती है
ऊन के साथ साथ
उनकी पूरी खाल भी
उनके मस्तिष्क पर
रोप दिये जाते हैं
अफ़ीम और चरस के पौधे
एक बड़ा षड्यंत्र
बचपन में ही
भर दी जाती है रेत
उनकी मुठ्ठियों में
अंध विश्वास की

और बांधी जाती हैं पट्टियां
उनकी आँखों पर
तर्कहीनता की
फिसल जाता है उनका पूरा जीवन
उनकी उंगलियों की दरारों से
मर जाते हैं उनकी आँखों के सपने
उनके शरीर में भर दिये जाते हैं
नफ़रत के रक्त बीज
और विस्फोट किया जाता है उनका
भरे बाज़ारों में
बड़े शहरों में
रिमोट कंट्रोल द्वारा
हमें चुप्पी तोड़नी होगी
और लाना होगा उन्हें वापस
इन साम्प्रदायिकता की
बारूदी चरागाहों से
यह चुप्पी अब पक चुकी है
समय की बट्ठी में
और पहुंच चुकी है
उस सीमा तक
जहाँ उत्पन्न होती है
चुप्पी से एक चीख़
एक पुकार
हमें बेनिकाब करना होगा
राजनीती और धर्म की आड़ में
रचा जाने वाला
यह आदमख़ोर शोषण

*

चीते, चूहे और चील की दोस्ती

चूहे कभी भी निकल सकते हैं
अपनी बिलों से
चीते कभी भी घुस सकते हैं
बस्तियों में
चील कभी भी मंडरा सकते हैं
शहर पर

और यह शहर
तुम्हारे भीतर का
एक विचार भी हो सकता है
तुम्हारी आँखों में पनपा
एक सपना भी हो सकता है
तुम्हारे मस्तिष्क में उपजा
एक सुंदर सा तर्क भी ही सकता है
और यह शहर
तुम्हारे दिल का वह
रोशन कोना भी हो सकता है
जहाँ जलते हैं विश्वास के दीप
चीते चील और चूहे की दोस्ती
बहुत पुरानी है
एक चीर-फाड़ करता है
दूसरा कुतरता है
भाईचारे का आंचल
और तीसरा नोचता है
मानवता का शरीर
राजकुमार का सपना
चीते के पंजे में कैद हुआ
चूहे ने उसके पंख कुतरने शुरू किये
चील ने उसको नोचना आरंभ किया
मैं राजकुमार के सपने को
इनसे छुड़ाऊंगा
मैं बेनिकाब करूंगा
चीते, चूहे और चील की यह दोस्ती.

*

वे स्वयं कश्मीर थे

वे निकले थे...
जैसे उखड़ता है कोई चिनार.
जड़ों की बांहों में भर कर
अपनी सारी मिट्टी.
और हाथ-पत्तों में भर कर
अपनी सारी छाँव.
वे निकले थे मध्यरात्रि को

सूर्य उनकी जेब में था
और चांद को वे
अपनी हथेलियों पर सजा रखे थे.
उनकी सांसों में थी
"घुफा-क्राल" की मिट्टी की महक.
और रक्त में थीं
"बुर्ज़हामा" की यादें.
वे निकले थे...
उन के मन में था शिव
और पीठ पर "हरिपर्वत" .
उनकी झोलियों में थे
नाग-पूजा के पुष्प
और आँखों में प्राचीन मन्दिर.
वे हो के आये थे
"करकोटा" के सभ्य शहर से.
वे निकले थे...
"ल्ल्ताद्तिया" था उन का आदर्श
और "अनन्ता" के चश्मे
उनके पाँव से फूटते थे.
उनकी ध्वनि में था
आचार्य आनन्द वर्धन
और शब्दों में
आचार्य अभिनवगुप्त
उन के सिर पर था
"कश्यप" का आशीर्वाद
वे निकले थे...
और उन ही के साथ निकले थे
फूल-शहर के रंग
फूल-शहर की खुशबूएं.
वे जहां जहां भी खीमें गाड़ते थे
वहां वहां बनती थी कश्मीर घाटी
क्योंकि वे स्वयं कश्मीरी थे.

*

वेलेंटाईन-डे और कर्फ़्यू

आज वेलेनटाईन-डे के अवसर पर

भावनाओं में महकती है
भीनी भीनी ख़ुशबू
जिस्म-व-जान में दोड़ती है
एक मदहोश लहर
आत्मा के झरोखों से आने लगती है
स्वर्ग की सुगन्धित पवन
इस दिन की प्रतीक्षा थी पूरे वर्ष
कि मिलन का अवसर मिल जाए
किसी रेस्टुरां के काफ़ी टेबल पर
खोल देते हम एक दूजे के प्रेम-ग्रंथ
और इन रोचक क्षणों के बीच
होले से मैं निकालता
एक अधखिला लाल गुलाब
सोंपता तुम्हारे चन्दन हाथों में
और प्रेम प्रतिज्ञा के तौर
दोहराता मैं एक बार फिर
प्रेम वचन
"मेरी जान मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ"
और तुम भी मेरी धड़कनों के साज़ पर
सरगोशियों में गुनगुनाती एक और बार
"मैं भी तुम्हें बहुत चाहती हूँ जानम"
मेरे पूरे व्यक्तित्य में बज उठते
वफ़ा के तार
मैं नज़रों के हात्थों टाँकता
तुम्हारे बालों में प्यार के पुष्प
तुम्हारी बोजल पलकों के नीले आकाशों पर
उड़ान भरते
मेरी दृश्य के परिन्दे
म्मलिकत-ए-मुहब्बत की अप्सराएं
हम पर बरसाती रंग रंग के फूल
हम पर प्रकट होजातीं
प्यार की लज़तें
लेकिन मेरी जान
आज सातवें दिन भी करफ्यू जारी है
सारे शहर पर दहशत तारी है
सडकें वीरान हैं
और परिन्दे तक भी

टीयर-गेस शालिंग से सहमे हुए हैं
फ़ोन, इंटरनेट और केबल नेटवर्क
बंद हैं
मगर मेरी जान
मैं अपनी मस्जिद-ए-दिल में
तुम्हारी काल्पनिक प्रतिमां के समक्ष
अपने माथे पर सजाये
लाल गुलाबों का एक उपवन
सलाम करता हूँ तुम्हें
कि कुछ तो प्रेम-दिवस का भरम रह जाए
कुछ तो पिन्दार-ए-मुहब्बत का भरम रह जाए.

*

मैं पालूंगा एक सपना

मैं पालूंगा एक सपना
जिस में होगी एक पूरी सृष्टि
एक सुंदर शहर
जहां अभी तक
नहीं तराशा गया होगा कोई इश्वर
न ही जानते होंगे लोग झुकना
न ही टेढ़ी हो गई होंगी
उन की रीढ़ की हड्डियां

मेरे सपने में
ईजाद नहीं हुई होंगी
तिजोरियां
और न ही ज़ंजीरें

जिन लोगों के पास नहीं होता कोई ईश्वर
वे नहीं बनाते, तलवारें, किरपान और त्रिशूल
न ही उनके पास होता है डर
और न दूसरों को डराने वाली कोई बात
जहां तिजोरियां नहीं होतीं
वहां नहीं होती भूख

जहां ताले नहीं होते
वहां नहीं होते चोर

जहां मालिक नहीं होते
वहां नहीं होती ज़ंजीरें

मैं अपने सपने को पालूंगा और बड़ा करूंगा
मेरा सपना भरेगा
संघर्ष के धरातल पर
ख़रगोश की किलकारियां
मैं उसमें बोऊँगा इच्छाओं के सारे बीज
टांकूंगा भावनाओं के सारे पुष्प

मेरे सपने में उडेंगी
तर्क की रंगीन तितलियाँ
चहकेगी
यथार्थ की बुलबुल
मेरे सपने में पनपेगी
मिट्टी की सोंधी-सोंधी ख़ुशबू

मैं अपना सपना कोयले की खान में काम करने वाले
मज़दूर को दूंगा
वह मेरे सपने को सर्चिंग टार्च में बदल देगा
जो उसको खान की अँधेरी सुरंगों से निकाल कर
सृष्टि के अंतिम छोर तक ले जाएगी
जहां होगा उसका एक पूरा संसार

मैं अपने सपने को
स्कूल जाते बच्चों के टिफिन में रख लूंगा
जिस को देख कर वे भूल जाएंगे
भारी बस्तों के बोझ से घिसी
अपनी नन्ही पीठ का नन्हा सा दर्द

मैं अपना सपना
वैज्ञानिक को दूंगा
जो उसको जीवन की प्रयोगशाला की
मेज पर पड़े
उस कंकाल आदमी पर आजमाएगा
जिस पर युगों से केवल
प्रयोग ही किए जा रहे हैं
मेरे सपने से उस पर उभर आयेगा मांस

और उस में दौड़ेगा जीवन

मैं अपने सपने को रोप लूंगा
सरिता के पानी पर
उसकी लहरों पर दहकेगा
एक पूरा ब्रम्हाण्ड
जिस में पिघल जाएगा
वह अकेला हंस भी
जिसकी आँखों में
केवल मेरे नाम की इबारत लिखी है

मैं अपना सपना परोस लूंगा
शरणार्थी शिविर में जन्म लेने वाले
उन सभी बच्चों की आँखों के थालों में
जिनकी मांऐं
अपने सूखे खेतों को खुला छोड़ने पर मजबूर हैं
दूसरों के चरने के लिए
केवल एक रजिस्ट्रेशन कार्ड बनवाने के लिए
और उसमें एक काल्पनिक पितृ नाम भरने के लिए

मैं अपना सपना मछुआरे को दूंगा
जो बुन लेगा उससे
एक रंगीन जाल
और पकड़ेगा
सागर की सबसे सुंदर मछली
जिस पर कभी किसी
मगरमच्छ की नज़र न पड़ी हो
और न ही उस की आँखों में
अटका हो
किसी का फैंका कोई तीर
मैं उसको अपने मन के
अक्वेरियम में पालूंगा

मैं अपना सपना समुद्र को दूंगा
बदले में मांगूंगा उसका सारा नमक
जिसको छिडक सकूं एकांत में
अपने उस ताज़े से घाव पर
जिसमें फड़फडा रही है

क्रान्ति नाम की एक नई कविता.

*

पुलवामा नरसंहार पर

ओ मेरी घाटी के युवाओं
तुम कहाँ चल दिए हो
सफ़ेद पोशाक पहनकर
उम्र के इतने सवेरे-सवेरे
क्या यह भी कोई
जाने का समय है, भला !

तुम्हारे पीछे ये
जनाज़ों के विशाल जुलूस
कहाँ अच्छे लगते हैं
मरने की भी कोई उम्र होती है
मेरे लाड़लो !

आबिद, क्या तुम्हें भी
इतनी जल्दी थी जाने की
तुम तो परसों ही
हैदराबाद के उस अस्पताल से
हफ़्ते भर की छुट्टी पर घर आए थे
जहाँ तुम मियां-बीवी काम करते थे
तुम्हारी एम०बी०ए० की डिग्री
अब एक प्रश्नचिन्ह बन गई है
और प्रश्नचिन्ह बन गई है
तुम्हारी इण्डोनेशियायी पत्नी भी
जब से तुम गए हो
तुम्हारी तीन महीने की बेटी
अदीबा बिलख रही है ।

और तुम मुर्तज़ा...
तुमने तो पिछले ही महीने
आठवीं कक्षा पास की थी
क्रिकेट तुम्हारा जुनून था बेटे
और तुम अक़सर कहते थे
कि तुम्हें राष्ट्र के लिए खेलना है

क़ातिलों ने तुम्हें
ज़िन्दगी की कोई पारी खेले बिना ही
आऊट किया ।

और तुम आमिर, सुहेल, शहबाज़
शाहनवाज़, तौसीफ़ तुम सब भी...
तुम्हारे जिस्मों पर
सफ़ेद कफ़न से झाँकते
ये रिसते घाव
ये लाल-लाल फूल
मुझसे देखे नहीं जाते
मुझसे नहीं देखे जाते
ये असँख्य नरसंहार

उन्नीस सौ नब्बे में
पाँच नरसंहार
एक सौ तिरानवे की
निर्मम हत्या
उन्नीस सौ इक्यानवे में
आठ नरसंहार
एक सौ पाँच की हत्या
उन्नीस सौ बानवे में
सात नरसंहार
सड़सठ की हत्या
उन्नीस सौ तिरानवे में
नौ नरसंहार
एक सौ बत्तीस का क़त्ल
पिछले तीस वर्षों में
असँख्य नरसंहार
हज़ारों आम लोगों की
दर्दनाक हत्याएँ

अब हम नरसंहारों
और निर्दोषों की हत्याओं
की गणना भूल गए हैं
भूल गए हैं
विशाल क़ब्रिस्तानों की सँख्या

मुझसे नहीं देखा जाता है
तुम्हारी माँओं का रुदन
बहनों का विलाप
तुम्हारे पिताओं की
सूखी सहमी आँखें
क्या तुम नहीं जानते थे
कि शिकारी ताक़ लगा कर बैठे हैं
और तुम बेपरवाह कुलाचें भर रहे थे
आज़ाद हिरणों की तरह ।

उन्हें इनसानी ख़ून का चस्का लगा है
उनके मन में पलने वाले फ़ासीवाद को
हर आतँकी का संरक्षण प्राप्त है
हम सब उनके निशाने पर हैं
और निशाने पर है हमारी अस्मिता
हमारी मर्यादा, हमारी पहचान
उनके निशाने पर है हमारा पूरा देश
जिसकी जड़ों को वे
खोखला करने पर आमादा हैं।

*

मत जगाओ मेरे बच्चों को

मत जगाओ मेरे बच्चों को गहरी नींद से
इन्हें सोने दो परियों की गोद में
सुनने दो इन्हें सनातन स्वर्गीय लोरियाँ
ये क़िताबों के बस्ते रहने दो इनके सिरहाने
रहने दो इनकी नन्ही जेबों में सुरक्षित
ये क़लमें, पेंसिलें और रँग-बिरँगे स्केच पेन

ये निकले थे स्कूलों के रास्ते
इस विशाल ब्रह्माण्ड को खोजने, निहारने
ये निकले थे अपने जीवन के साथ-साथ
पूरे समाज की आँखों में भरने सुनहले सपने
अभी इनका अपना कैनवस कोरा ही पड़ा था
और ये सोच ही रहे थे भरना उसमें
विश्व के सभी ख़ुशनुमा रँग
लेकिन तानाशाहों के गुर्गों ने इन्हें

रक्तिम रँग से रँग दिया

मत ठूँसो इनके बस्तों में अब
चॉकलेट कैण्डीज़ और केसरिया बादामी मिठाइयाँ
अब व्यर्थ हैं ये लुभाने वाली चीज़ें इनके लिए
इनके बिखरे पड़े टिफ़न को रहने दो ज्यों का त्यों
अब यह संसार की भूख से मुक्त हुए हैं

अब इनको नहीं चाहिए गाजर का हलवा, छोले-भटूरे
या फिर कोई मनपसन्द सैण्डविच
जब रोटी और रक्त के छींटें मिलते हैं एक साथ
आरम्भ होने लगता है साम्राज्य का विनाश
सूखी रेत की तरह सरकने लगता है
बड़े-बड़े तानाशाहों का अहँकार

मत जगाओ मेरे बच्चों को गहरी नींद से
इन्हें सोने दो परियों की गोद में
मत उतारो इनके लाल-लाल कपड़े
इनके ख़ून सने जूते, लहू रँगी कमीज़ें
इनको परेशान मत करो अपनी आहों और आंसुओं से
इन्हें अशान्त मत करो अपनी सिसकियों, स्मृतियों से
मत जगाओ मेरे बच्चों को गहरी नींद से
इन्हें सोने दो परियों की गोद में
सुनने दो इन्हें सनातन स्वर्गीय लोरियाँ
ये नींद के एक लम्बे सफ़र पर निकल पड़े हैं ।

*

कर्फ्यू

चील ने भर ली है
अपने पँजों में
शहर की सारी चहल-पहल

सड़कों पर घूम रही है
नँगे पाँव चुप्पी की डायन

गौरैया ने अपने बच्चों को
दिन में ही सुला दिया है

अपने मन के बिस्तर पर
और अपने सिरहाने रखी है
आशँकाओं की मैली गठरी

दूर बस्ती के बीच
बिजली के खम्भे के ऊपर
आकाश की लहरों पर
कश्ती चलाता एक पँछी
गिर कर मर गया है ।

*

अंधेरे की पाज़ेब

अन्धेरे की पाज़ेब पहने
आती है काली गहरी रात
दादी माँ की कहानियों से झाँकती
नुकीले दाँतों वाली चुड़ैल-सी
मारती रहती है चाबुक
मेरी नींद की पीठ पर
काँप जाते हैं मेरे सपने

वह आती है जादूगरनी-सी
बाल बिखेरे
अपनी आँखों के पिटारों में
अजगर और साँप लिए
मेरी पुतलियों के बरामदे में
करती है मौत का नृत्य
अतीत के पन्नों पर
लिखती है कालिख
वर्तमान की नसों में
भर देती है डर
भविष्य की दृष्टि को
कर देती है अन्धा

मेरे सारे दिव्य-मन्त्र
हो जाते हैं बाँझ
घोंप देती है खँजर
परिचय के सीने में

रो पड़ती है पहाड़ी शृँखला
सहम जाता है चिनार
मेरे भीतर जम जाती है
ढेर सारी बर्फ़ एक साथ!

*

दुख होता है

(फलस्तीनी स्वतन्त्रता सेनानियों के नाम)

प्रात: कालीन सूर्य की
लालिमा को
काली बदली अगर छिपाए
दुःख होता है
आँखों पर प्रतिरोध लगा कर
रात्र को भी दिन बतलाए
दुःख होता है
पाप की काली चादर हर ओर
फैले,दिनकर
देखता जाए
दुःख होता है
मानव को
मानव अधिकार के बदले
स्वतन्त्रता के बदले
घाव मिले
गोली मिल जाए
दुःख होता है
आशा,पुष्प और सत्य की क्यारी
हठधर्मी से रौंधी जाए
दुख होता है।

उनकी बात

हिंसक अनुभवों के मानसिक परिणाम: कश्मीर में जन्म लेती अदृश्य तबाही

डॉ. पुनीत बेदी

मैं एक छोटे तंग कमरे में फर्श पर बैठा मरीज़ों को देख रहा था, जब मैंने कमरे के बाहर किसी के गिरने की आवाज़ सुनी। एक युवती बेहोश होकर गिरी हुई थी। मैंने फर्श पर ही उसकी जांच की, क्योंकि जहां मैं दवाखाना चला रहा था वहां उन्हें लिटाने की कोई और व्यवस्था नहीं थी। वह कमज़ोर दिख रही थी पर उसकी नब्ज़ स्थिर थी। उसका रक्तचाप थोड़ा कम था, पर वो ठीक ही लग रही थी। वह कुछ मिनटों में होश में लौटी।

एक सप्ताह पहले, उस इलाके में 'सांप्रदायिक दंगा' हुआ था। स्थानीय लोगों के एक विरोध प्रदर्शन के बाद, एक सुनियोजित भीड़ ने उनके घरों पर हमला बोल दिया था, हाथ में पत्थर और घर जलाने के लिए मशाल लिए। फिर पुलिस आई। और उसने वही किया जो स्थिति पर 'नियंत्रण' के लिए हमेशा करती है। आंसू-गैस के गोले दागे, लाठी चार्ज किया और कुछ .303 गोलियां दागीं, उस कुख्यात प्रथम विश्वयुद्ध की एनफील्ड राइफलों से जो दिल्ली पुलिस को 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान 'बाग़ियों' से लड़ने के लिए दी गई थीं। उसके बाद बस्ती की घेराबंदी की गई और इस संवेदनशील इलाके में कर्फ्यू लगा दिया गया। युवा लड़कों को पुलिस मनमाने ढंग से उठाने लगी। उनमें से कई अगले कुछ सालों तक फिर दिखाई नहीं दिए। ('संवेदनशील इलाका' ऐसी जगह को कहा जाता है जहां धार्मिक अल्पसंख्यक या दलित/आदिवासी समुदायों के गरीब लोग रहते हैं। उदाहरण के लिए जोर बाग, गोल्फ लिंक्स, सुंदर नगर और वसंत विहार 'संवेदनशील इलाके' नहीं हैं।)

खैर, जिस दिन कर्फ्यू में कुछ ढ़िलाई हुई, हम कुछ कार्यकर्ताओं के साथ दंगा प्रभावित क्षेत्र में गए थे। जो दृश्य हमने वहां देखा, वैसा ही था जैसा 1947 के बारे में मेरे माता-पिता ने मुझे बताया था या 1984 में जो मैंने खुद देखा था, बस शुक्र है कि यह थोड़ा छोटे पैमाने पर था। अधजले घरों में बीमार और कमज़ोर लोग। शरीर, दिल और आत्मा से घायल पुरुष, नाउम्मीद बैठे हुए, हिम्मत हारे हुए, अपनी उदास आँखों से हमें देख रहे थे। महिलाएं तो खैर कहीं दिखाई नहीं दे रही थीं। हमें तुरंत लगा कि हमें 'कुछ करना चाहिए' । हमने लोगों से बात करने की कोशिश की और उनमें से कुछ जो बोल सके, उनसे पता चला कि उनके घर में या पड़ोस में कोई न कोई बीमार व्यक्ति है जिसे तुरंत चिकित्सकीय सहायता की ज़रुरत है। हमने ज़रूरत की चीज़ों की सूची बनायी ताकि हम प्रथमोपचार जैसा कुछ शुरू कर सकें। हमने कुछ बुनियादी दवाएं खरीदीं, जो अधिक मात्रा में खरीदी जाएँ तो बहुत सस्ती आती हैं।

स्थानीय लोगों ने एक कमरे की व्यवस्था की जो ऐसे घर में था जिसका कुछ हिस्सा जला हुआ था। हमने अपना अस्थाई दवाखाना वहां शुरू किया। हमने खांसी के सिरप, एंटीबायोटिक्स अथवा दर्द निवारक गोलियां, दमे की दवाइयां आदि बांटना शुरू की, और कभी कभार ज़ख्मों पर पट्टी कर दिया करते थे। उस महिला पर लौटें जो बेहोश हो गयी थी- मैंने उन्हें पानी दिया, एक कप चाय पिलाई और थोड़ा दिलासा व दवाएं देकर विदा किया।

बस्ती में हर दिन मैंने अपने देश के बारे में, लोगों के बारे में और जीवन के बारे में नयी-नयी बातें देखीं, जो मैं पहले नहीं जानता था। मैं गरीबी को प्रत्यक्ष रूप से अपने सामने देख रहा था। मैं अपने समय के कई बड़े कलाकारों से, संगीतकारों से मिला जो उपेक्षा की वजह से ख़तम हो रहे थे, और भी कई किस्से हैं, पर वह मैं और किसी दिन सुनाऊंगा।

दवाखाने में लगभग रोज़ जो मैंने अद्भुत बात देखी वह युवतियों का दवाखाने में या घर में अचानक बेहोश होकर गिर पड़ने की घटनाएं थीं। पहले दिन मैंने एक युवती को अचानक बेहोश हुए देखा था, दो हफ्ते बीतते-बीतते यह संख्या बढ़कर रोज़ लगभग चार-पांच हो गयी। मैं हैरान हो गया। चिकित्सकीय जांच में मैंने उन्हें ठीकठाक पाया। सभी युवा थीं, 20 वर्ष की उम्र से 40 वर्ष की उम्र के अन्दर ही होंगी, पर फिर भी वह बेहोश होतीं। वह सब गरीब थीं पर उनके परिवारों के पुरुष कोई भुखमरी के शिकार नहीं थे, तो फिर समस्या क्या थी? उस इलाके के पुरुष आम तौर पर रेहड़ी-पटड़ी वाले, साइकिल पंक्चर ठीक करने वाले, कारीगर, बढ़ई, मेकैनिक, बिजली का काम करने वाले, रिक्शा खींचने वाले, बस कंडक्टर और अन्य तरह की दिहाड़ी पर काम करने वाले थे, जो कर्फ्यू के कारण काम पर नहीं जा पा रहे थे और इसीलिए कमा नहीं पा रहे थे। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे उनकी मामूली बचत गायब होती जा रही थी। जाड़े की गुनगुनी धूप में पुरुष बेकार, हताश भटकते रहते थे, पर फिर भी ठीकठाक दिखते थे। कभी कभार मज़ाक भी कर लेते थे। भुगतना औरतों को पड़ता था। उन्हें अपना चूल्हा जलाए रखने के लिए, अपने बच्चों की देखभाल के लिए, और जिन्हें पुलिस उठा ले गयी थी उन अपनों के लिए बड़ी परेशानियां झेलनी पड़ती थीं। मैं हालांकि फिर भी औरतों के बेहोश होने की घटनाओं के सिलसिले को समझ नहीं पा रहा था। जब तक एक के बाद एक महिलाओं ने मेरे सामने वही कहानी नहीं दोहराई। वह लगभग नहीं के बराबर खाती थीं, चाहे घर में खाना उपलब्ध हो, और पानी भी बहुत कम पीती थीं। पर क्यों?

बाद में मुझे बताया गया कि महिलायें पेशाब तो घर के किसी कोने में कर लेती थीं, जहाँ से पानी की निकासी हो। पर शौच के लिए केवल अँधेरा होने के बाद और पौ फटने से पहले ही जा पाती थीं। चूंकि रात का कर्फ्यू जारी था इसलिए वह तब तक खाना टाल देतीं थीं जब तक भूख से मरने की नौबत न आ जाए, ताकि उन्हें शौच के लिए जाना ना पड़ें। बस्ती में मैंने जो छह

महीने बिताए उनमें मैंने महिलाओं के बारे में, उनकी चिंताओं, उलझनों और डर के बारे में काफी कुछ जाना। दुनिया के बारे में उनके नज़रिए, समाज में उनकी भूमिका, हौसले और दृढ़ निश्चयता के बारे में। इसके बावजूद उनकी नाज़ुक स्थिति बिलकुल साफ़ रूप से दिख रही थी। वह टूट रही थीं। बच्चों को और पुरुषों को सँभालने (जो चरम हताशा और गुस्से की अवस्था में थे) में रातों को सो नहीं पाने के अलावा, अपने गायब बेटों और परिजनों के लिए भी चिंतित और भयभीत थीं।

पी.टी.एस.डी के बारे में मुझे किताबों और अखबारों से (खासकर पूर्वोत्तर की ख़बरों के कारण) जानकारी थी, पर यहाँ जो था वो सतत जारी रहने वाला तनाव था। उनमें हर संभव मनोवैज्ञानिक विकार देखा जा सकता था। पहली दिक्कत जो तनाव, भूख और पानी की कमी पैदा करती है, वह है मासिक धर्म में समस्या। सभी महिलायें यह जानती हैं। परीक्षाओं, यात्रा, तनाव, शोक आदि के दौरान पीरियड नियमित नहीं रहते। हर वह औरत जिसका मासिक धर्म कुछ दिन भी देरी से होता है, जानती हैं कि यह कितना तकलीफदेह हो सकता है, और यहाँ तो कई महिलाओं को महीनों से मासिक धर्म हुआ ही नहीं था। 'पी.टी.एस.डी' के बारे में मैंने जो भी पढ़ा था, सब मेरी आँखों के सामने हो रहा था, रोज़।

मैं जब यह लिख रहा हूं, चार सप्ताह से अधिक हो चुके हैं कि कश्मीर में लगभग 80 लाख लोग अपने घरों में फंसे हुए हैं। राजनीतिक विशेषज्ञ, कार्यकर्ता, एक आइ.ए.एस अधिकारी जिसने इस्तीफा दे दिया- सब ने कश्मीर के लोगों की पीड़ा के बारे में बोला या लिखा है। हर किसी ने, सिवाए तथाकथित पत्रकारों के। जो कहा गया है उसमें मैं और कुछ जोड़ने में सक्षम नहीं हूं । पर मैं ठोस अनुमान लगा सकता हूं कि वहां की महिलाओं पर क्या गुज़र रही होगी। ऊपर लिखे मेरे अपने पेशेगत अनुभव के विपरीत, मैं यह समझता हूँ कि सब महिलाएं एक ही सामाजिक वर्ग से नहीं आतीं। कुछ उन महिलाओं जितनी गरीब होंगी जैसी मैंने 27 साल पहले देखी थीं, और कुछ अमीर। वह डॉक्टर, वकील, पत्रकार, यूनिवर्सिटी प्रोफेसर या गृहणियां हो सकतीं हैं , पर उनकी समस्याएं लगभग एक जैसी होंगी। हाँ, भुखमरी और शौचालयों की कमी की स्थिति सब में एक जैसी नहीं होगी। पर तनाव, भय और असुरक्षा समान होगी। जो स्वास्थ्य-संबंधी समस्याओं से जूझ रही होंगी, उन्हें चिकित्सकीय देखभाल - रोज़मर्रा और आपातकालीन दोनों - नहीं मिल पा रही होंगी। जो एक महीना पहले पूरी तरह स्वस्थ रहीं होंगी, उन्हें आने वाले कई वर्षों तक, या हो सकता है ज़िन्दगी भर भी, गंभीर समस्याएं होंगी। आपको एक उदहारण देना चाहूँगा। मध्यम-स्तर के उच्च रक्तचाप (हाइपर-टेंशन) या मधुमेह (डाइबिटीज़) वाले एक पुरुष और एक महिला जो गर्भवती नहीं है, दवाईयों के कुछ डोज़ न मिलने से भी शायद बच जाएँ। पर इन्हीं रोगों से ग्रस्त एक गर्भवती महिला इन दवाओं का केवल एक डोज़ न मिलने पर अपनी ज़िन्दगी और बच्चा खो सकती हैं।

इतनी बड़ी आबादी के एक साथ और इतनी लम्बी अवधि तक पी.टी.एस.डी का सामना करने के नतीजे भीषण होंगे। सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक समस्याएं इतनी ज़्यादा हैं कि यहाँ समझाना मुश्किल है। यह सेनिटरी नैपकिन की उपलब्धता जितनी साधारण बात से लेकर, व्यापक डिप्रेशन की महामारी और आत्महत्याओं तक हो सकती हैं। परिणाम नरसंहार जितने भयानक हो सकते हैं। सरकार को एक मिनट अधिक के लिए भी इस घेराबंदी को जारी रखने की सलाह देना गलत होगा। एक मामूली चिकित्साकर्मी का आज की शक्तिशाली सरकार से यही कहना है - समय रहते सुनिए वरना हम सब तबाह होने वाले हैं! पहले ही बहुत नुकसान हो चुका है। हम सब इस दिन के लिए उम्र भर पछतायेंगे।

मैं नास्तिक हूं इसलिए प्रार्थना भी नहीं कर सकता, लेकिन आप में से जो कर सकते हैं ज़रूर दुआ कीजये इन लोगों के लिए जो बिना अपनी किसी गलती के ऐसे अमानवीय हालात झेल रहे हैं । चाहे हिन्दू हों, सिख हों, मुस्लिम, ईसाई, जैन, बौद्ध या फिर नास्तिक। भारतीय हों या प्रवासी भारतीय या फिर गैर भारतीय, हम सब आज के दिन को उम्र भर पछताएंगे। यह सालों तक हमारे सामूहिक अन्तरात्मा पर बोझ बना रहेगा। देश की घायल आत्मा को ठीक करने का कोई मरहम नहीं है।

उनकी बात

कैद के छप्पन दिन

रोहिण कुमार

मेरे बगल की सीट पर बैठा फ़रहद चार महीने बाद घर जा रहा था, लेकिन उसके चेहरे पर रत्ती भर उत्साह नहीं था. उसने 2 सितंबर को श्रीनगर जा रहे अपने एक दोस्त से अपने घर आने की सूचना भिजवायी थी. आखिरी बार 3 अगस्त की शाम उसकी बात अपनी मंगेतर और मां से हुई थी. ठीक दो दिन बाद 5 अगस्त, 2019 को वह हुआ, जिसने भारत और कश्मीर के सत्तर साल पुराने रिश्ते को तार–तार कर दिया.

महीने भर बाद वह 7 सितंबर की तारीख़ थी। एयर एशिया की फ्लाइट अपने साथ ढेरों अनिश्चय और भय लिए दुनिया के सबसे बड़े जिंदा कैदखाने की ओर बढ़ी चली जा रही थी. अस्सी मिनट के सफ़र में फ़रहद लगभग शांत ही रहा. मैं उसे बीच-बीच में टोकता रहा, घाटी के बारे में कुछ-कुछ पूछता रहा. ऐसी मनहूसियत से भरी यात्रा मैंने पहले कभी नहीं की थी.

वेलकम टु कैदखाना

श्रीनगर एयरपोर्ट पहुंचने पर एयर एशिया ने यात्रियों का स्वागत किया, "श्रीनगर एयरपोर्ट पर आपका स्वागत है. यह एक डिफेंस एयरपोर्ट है. तस्वीरें खींचना निषिद्ध है." फरहद ने पहली बार मेरे टोके बगैर कहा, "जेल आगमन पर आपका स्वागत है. सिर्फ एयरपोर्ट डिफेंस का नहीं है, कश्मीर समूचा ही डिफेंस का है."

एयरपोर्ट को जैसे किसी सन्नाटे ने घेर रखा था. बिल्कुल शांत. एयरपोर्ट के भीतर की लगभग सारी दुकानें बंद थीं. यात्रियों और सुरक्षाबलों की संख्या तकरीबन बराबर रही होगी. एयरपोर्ट के ठीक बाहर कश्मीरियों की भीड़ जमा थी. उनमें कुछ अपनों से गले मिलकर रो रहे थे. एक उम्रदराज महिला, जो 60 के करीब होगी, उसने फ़रहद को गले लगाया और उसे चूमने लगी. हृदयविदारक दृश्य था वह. उनके चेहरों की रंगत बता रही थी कि कुछ असामान्य घटा है. मैंने फ़रहद से दिल्ली में मिलने का वक्त मांगा और प्रीपेड टैक्सी स्टैंड की तरफ बढ़ गया. टैक्सी लेकर मैं सीधे प्रेस क्लब पहुंचा.

एयरपोर्ट के हैदरपोरा इलाके में कुछ दुकानें खुली थीं. बाकी रास्ते भर में ज्यादातर दुकानों के शटर गिरे मिले. जगह-जगह पर सुरक्षाबलों के नाके थे. वे जानना चाहते कि मैं दिल्ली से इस वक्त कश्मीर क्यों आया हूं. मैं जगह-जगह प्रेस कार्ड और पहचान पत्र दिखाता और उनसे गाड़ी पार होने देने की गुजारिश करता. कुछ जगहों पर वे दिल्ली का पहचान पत्र देखकर रियायत

देते. कुछ नाकों पर रियायत नहीं भी मिलती और लगभग तीन से चार किलोमीटर लंबा डायवर्जन लेना पड़ता. हर तीस से पचास मीटर पर दो सीआरपीएफ जवान सड़क के दोनों ओर खड़े थे.

रास्ते में मैंने कई तस्वीरें खींचीं. कैब ड्राइवर गुलज़ार ने चेताया कि मैं तस्वीरें संभालकर खींचूं वरना परेशानी में पड़ सकता हूं. उनकी हिदायत दुरुस्त थी. कई दफ़ा सुरक्षाबलों ने फोटोग्राफरों और रिपोर्टरों के कैमरे यहां तोड़ दिए हैं. फोटो डिलीट करवाये जाते हैं. कश्मीर में रिपोर्टरों और फोटोग्राफर्स का सुरक्षाबलों के हाथों परेशान होना नयी बात नहीं है. इसे यहां सामान्य मान लिया गया है.

रास्ते भर मैं गुलज़ार से घाटी के हालात के बारे में बातचीत करता रहा. रास्ते में हुर्रियत नेता सैयद अली शाह गिलानी के घर के बाहर गुलज़ार ने गाड़ी थोड़ा धीमी कर दी. उन्होंने गिलानी के घर की ओर इशारा करते हुए कहा, "देखो, गिलानी साब का घर. दिखा? जहां तारीक-ए-हुर्रियत का बोर्ड लगा है. वहीं रहते हैं गिलानी साब. अभी तो लोगों को उनसे मिलने नहीं दे रहे हैं."

"गिलानी साब ही हमारे नेता हैं. इन्होंने अब तक जो-जो बातें कहीं, सारी सच साबित हुईं."

मैंने गुलज़ार से पूछा कि उन्हें वो कौन-कौन सी बातें लगती हैं जो गिलानी ने कहीं और वो सच साबित हुई हैं.

"गिलानी साब कश्मीरियों से कहते रहे हैं कितनी भी भारतपरस्ती कर लो, कुछ फायदा नहीं होगा. आज देखो, इंडिया ने क्या किया. कश्मीर और भारत के बीच का जो पुल था आर्टिकल 370, उसे एक झटके में खत्म कर दिया. कश्मीरियों से एक बार पूछ तो लेते. खैर, उन्होंने (भारत) कश्मीरी अवाम और राजनीतिक कायदों की कद्र की होती तो सालों पहले रेफरेंडम नहीं करवाते?"

कश्मीरियों को दी जा रही यातनाओं और परेशानियों की कहानियां गुलज़ार सुनाते रहे. करीब तीन घंटे लग गये प्रेस क्लब पहुंचने में. आम तौर से दस किलोमीटर का यह रास्ता आधे घंटे में तय किया जा सकता था.

भागो! राशिद खान आया…

प्रेस क्लब में पत्रकारों की बतकही चल रही थी. उनमें कुछ मेरे पत्रकार मित्र भी शामिल थे. एक फोटोग्राफर मित्र ने हाथ मिलाते हुए कहा, "वेलकम टु हेल. तुम क्यों मरने आए हो यहां?" एक अन्य ने मिलते ही पूछा, "वापसी कब है तुम्हारी? जाने के पहले मिलकर जाना. तस्वीरें और वीडियो पेन ड्राइव में है, मेरे ऑफिस में जमा करा आना." पत्रकार मित्रों से बातचीत में एक बात

बिल्कुल स्पष्ट हो गयी थी कि "भारतीय मीडिया" के लिए यहां माहौल मुफीद नहीं है. स्थानीय पत्रकारों में कथित मेनस्ट्रीम मीडिया के लिए गुस्सा है ही, लोगों में भी भारतीय मीडिया के प्रति विश्वास नहीं है.

कश्मीरियों के मुताबिक अनुच्छेद 370 हटने के बाद से ही जुमे की सामूहिक नमाज़ को सरकार ने अनुमति नहीं दी है. इस वर्ष सरकार ने ईद-उल-अज़हा की सामूहिक नमाज़ भी नहीं होने दी. बीती शाम सरकार ने ऐलान किया कि मुहर्रम का जुलूस निकालने की अनुमति भी नहीं है. मौलवियों को सरकार ने हिदायत दी कि वे मस्जिद के लाउडस्पीकर से किसी भी तरह की राजनीतिक टिप्पणी न करें. एक बुजुर्ग कश्मीरी ने बताया, "पहले भी सरकार और प्रशासन सामूहिक नमाज़ को वक्त-बेवक्त रोकती रही है, पर पहले इस तरह की पाबंदियां खासकर श्रीनगर और शहरी क्षेत्रों में होती थीं. मेरी याद्दाश्त में यह शायद 1990 के बाद हुआ है कि दूर-दराज के गांवों में भी लोगों को मस्जिद में नमाज़ पढ़ने नहीं दिया गया."

बुजुर्ग की बात से अन्य कश्मीरी भी सहमति जताते हैं. एक व्यक्ति (42) ने कहा, "कश्मीरी मुसलमानों को अपने धर्म का पालन करने के अधिकार से वंचित किया जा रहा है." यह कहते हुए आगे उसने जोड़ा, "हालांकि अब जब कश्मीर का भारत के संविधान से राब्ता ही नहीं रहा तो कैसे धार्मिक अधिकारों की उम्मीद की जाएगी. वो [सरकार] जितने जुल्म ढाहना चाहें, ढाहें. आज़ादी के लिए कुर्बानियां देनी ही पड़ती हैं."

प्रेस क्लब में सूचना मिली कि सरकार की पाबंदी के बावजूद श्रीनगर के हसनाबाद क्षेत्र में रैनावारी धर्मशाला चौक पर शिया मुसलमान मुहर्रम का जुलूस निकालने वाले हैं. सुगबुगाहट थी कि यह जुलूस हिंसक भी हो सकता है. प्रशासन जुलूस के साथ बहुत सख्ती से निपटेगा, इसका अंदाजा था. जुलूस स्थल पर हालात बिगड़ने के आसार के मद्देनज़र पत्रकार साथियों ने मुझे कुछ बहुत जरूरी सलाह दी.

जुलूस के रास्ते को सुरक्षाबलों ने बंद कर दिया था. सैकड़ों जम्मू–कश्मीर पुलिस, सीआरपीएफ और सेना के जवान तैनात थे. दूसरी तरफ काला कुर्ता पहने सैकड़ों नौजवानों का जत्था कर्बला को याद करते हुए मर्सिया गा रहा था. मर्सिया गाते हुए जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था. पुलिस लगातार अपील कर रही थी कि जुलूस आगे न बढ़े. मीडिया के लोग पुलिस के नाकों की तरफ खड़े होकर तस्वीरें लेने की कोशिश कर रहे थे. कहीं भी एक पल का इत्मीनान नहीं था कि पत्रकार अपने फोन या नोटबुक में कुछ ड्राफ्ट कर लें या फोटोग्राफर अपनी खींची हुई फोटो को एक बार देख ले. जुलूस और पुलिस दोनों की ही गतिविधियों पर मीडिया को चौकन्ना रहना था. हमला किसी भी ओर से हो सकता था.

जम्मू कश्मीर पुलिस के जवान फोटोग्राफरों को फोटो न खींचने की हिदायत दे रहे थे. भाषा हिदायत और चेतावनी की कम, धमकाने की ज्यादा थी. अचानक जुलूस के बीच से कुछ नौजवानों का समूह सुरक्षाबलों की ओर भागा. फट-फट जैसी धमाके आवाज़ की हुई. पुलिस ने जुलूस पर पैलेट चलाया था. लोगों में भगदड़ मची. जुलूस में मौजूद नौजवान पीछे हुए लेकिन भीड़ उत्तेजित हो गयी. इसी बीच एक झटके के साथ मेरी टी–शर्ट को पीछे से एक फोटोग्राफर साथी ने खींचा. उन्होंने जुलूस की ओर भागते हुए कहा, "रन, रन. राशिद खान इज़ देयर."

मुझे सिर्फ इतना समझ आया कि भागना है. बाद में पता चला कि राशिद खान रैनावारी थाना क्षेत्र के स्टेशन हाउस अफसर (एसएचओ) हैं. उनके बारे में पत्रकारों के बीच मशहूर है कि वे पत्रकारों के लिए खतरा हैं. वे पत्रकारों पर जबरन लाठीचार्ज करवाते हैं. फोटोग्राफर फोटो खींचने न पाए, इसके लिए अपशब्द और थाने में पत्रकारों को देर-देर तक बैठाने जैसे हथकंडे वे अपनाते हैं. उनके आदेश पर पुलिस जान–बूझ कर कैमरों पर लाठी से हमला कर देती है.

रैनावारी में वही हुआ, जिसका डर पत्रकारों को था. एसएचओ राशिद खान के आदेश पर पत्रकारों पर लाठीचार्ज करवाया गया. जिस फोटोग्राफर साथी ने मुझे भागने को कहा था, वे लाठियों से गंभीर रूप से चोटिल हुए. एक अन्य फोटोग्राफर साथी के कैमरे पर पुलिस ने लाठी से प्रहार कर तोड़ दिया. बहुत सारे अन्य पत्रकार साथियों को हल्की-फुल्की चोट आयी.

भगदड़ के दौरान कुछ पल के लिए मैं और मेरे साथ एक और गैर-कश्मीरी पत्रकार बाकी कश्मीरी पत्रकारों के ग्रुप से बिछड़ गये थे. स्थानीय लड़कों के एक समूह ने हम दोनों को भारतीय मीडिया का प्रतिनिधि समझ कर घेर लिया. हमारे बाल खींचे और धक्कामुक्की की. हमने लड़कों को बताया कि हम अंतरराष्ट्रीय प्रकाशकों के लिए लिखते हैं. ऐसा बोलकर हम उन्हें यकीन दिलाना चाहते थे कि हम वही लिखेंगे जो हम देखेंगे. हम बाकी भारतीय चैनलों के जैसा कुछ भी मनगढ़ंत लिखने या बोलने नहीं जा रहे. वह तो बेहतर हुआ कि कुछ ही मिनट में एक फोटोग्राफर साथी तुरंत हम तक पहुंच गए और कश्मीरी में कुछ कहते हुए हमें खींचकर बाहर सुरक्षित जगह पर ले गये.

फ़हद के सवाल

मैं भीतर से हिल गया था, हालांकि वापस प्रेस क्लब आकर मुझे अहसास हुआ कि औरों के लिए यह सामान्य बात है. वे हर रोज़ भीड़ के गुस्से और सुरक्षाबलों की बर्बरता के बीच पत्रकारिता करते हैं. उन्होंने कनफ्लिक्ट जोन में काम करने के लिए खुद को तैयार किया है. एक कश्मीरी स्वतंत्र पत्रकार जो न्यूयॉर्क टाइम्स के लिए भी लिखते हैं, उन्होंने कहा, "तुम दिल्लीवालों को एक-आध ऐसे अनुभव होने चाहिए. पता तो चले वहां के भारतीय मीडिया की करतूतों का खामियाज़ा किसे उठाना पड़ रहा है."

कश्मीरवाला मैगजीन के एडिटर-इन-चीफ फ़हद शाह ने कहा, "दिल्ली में एक पत्रकार को ट्वीट करने के लिए उत्तर प्रदेश पुलिस उठा ले जाती है तो सिद्धार्थ वरदराजन, राजदीप सरदेसाई, रवीश कुमार सारे नामचीन पत्रकार उस पत्रकार के पक्ष में लिखना-बोलना शुरू कर देते हैं. ट्विटर ट्रेंड करने लगता है. मीडिया की स्वतंत्रता पर हमला हो जाता है. लेकिन हर रोज़ कश्मीरी पत्रकार जान जोखिम में डालकर रिपोर्ट लिखता है, फोटो खींचता है, उसके बारे में दिल्ली के पत्रकारों को चिंता नहीं होती."

फ़हद ने हाल में पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए काज़ी शिबली के बारे में बताया. 29 वर्षीय काज़ी शिबली कश्मीरियत वेबसाइट के संपादक हैं. 25 जुलाई को शिबली को अनंतनाग के शेरबाग थाने में बुलाया गया था. कश्मीर में पत्रकारों के लिए थाने बुलाया जाना रूटीन कार्य जैसा है. इसके लिए कोई नोटिस नहीं दिया जाता. दोस्त-यार के माध्यम से पुलिस संदेश भिजवा देती है कि फलाने को थाने भेज दो. उस दिन शिबली को भी लगा कि यह रूटीन काम ही है. वे घर के ही कपड़ों में थाने चले गये.

पहले तो पुलिस ने शिबली के बारे में कुछ भी जानकारी होने की बात से इनकार किया. अगस्त के आखिरी दिनों में शिबली के परिवार को गिरफ्तारी के दस्तावेज दिए गए. हफिंगटन पोस्ट को शिबली की बहन काज़ी इरम ने बताया कि पुलिस द्वारा भेजे गये दस्तावेज के मुताबिक काज़ी शिबली को पब्लिक सेफ्टी एक्ट (पीएसए) 1978 के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है. मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, 5 अगस्त के बाद तकरीबन दो से चार हज़ार कश्मीरियों को पुलिस ने गिरफ्तार किया है. इरम ने हफिंगटन पोस्ट को बताया कि काज़ी की वेबसाइट पर एंटी-नेशनल रिपोर्ट छापने के आरोप लगाए गए हैं.

"क्या यह आपको मीडिया की अभिव्यक्ति पर हमला नज़र नहीं आता? या दिल्ली वाले पत्रकार सेलेक्टिव आउटरेज के धुरंधर हैं?" फहद ने मुझसे पूछा.

फ़हद, स्थानीय पत्रकारों और आम कश्मीरियों से बातचीत में मैंने महसूस किया कि वे भारत में कश्मीरी महिलाओं पर हो रही अभद्र और अश्लील टिप्पणियों से खासा नाराज़ थे. भारत की बड़ी आबादी क्यों कश्मीरी महिलाओं पर हो रही अभद्र टिप्पणियां पर खामोश है, पूरे प्रदेश को नज़रबंद किए जाने के खिलाफ भारत के लोगों में गुस्सा क्यों नहीं है- ये सवाल कश्मीरियों के मन में प्रबल हैं.

"डेढ़ महीने से घाटी में इंटरनेट और फोन बंद हैं. लाखों लोगों का अपने परिवारों से संपर्क टूट गया है. क्या दूसरे राज्यों के नागरिक अपने प्रदेशों में दो-चार दिन भी ऐसा होने देना चाहेंगे?" फहद ने मुझसे पूछा.

मोदी मीडिया पर गुस्सा

कश्मीर में इंटरनेट बंद होने के कारण सूचना के प्रसार की संभावनाएं बेहद सीमित हो गयी हैं. यह एक बड़ा कारण है कि स्थानीय पत्रकारों को भी जरूरी जानकारियां मिलने में गंभीर दिक्कतें आ रही हैं. एक स्थानीय पत्रकार ने मुझे श्रीनगर के सौरा में विरोध मार्चों की कुछ तस्वीरें दिखायी. उन तस्वीरों में प्रदर्शनकारियों ने "बीबीसी और अल-ज़ज़ीरा रिस्पेक्ट" के प्लेकार्ड उठा रखे थे.

कश्मीर के अलग-अलग इलाकों में लोगों ने एक स्वर में भारतीय चैनलों को प्रौपगैंडा का माध्यम बताया. डाउनटाउन के एक निवासी ने गुस्से में यहां तक कह दिया कि अगर गलती से भी आजतक, एबीपी, ज़ी न्यूज़ के रिपोर्टर उसे दिखें तो वह उन्हें दौड़ा-दौड़ाकर पीटेगा.

"सारी दुकानें बंद, सड़कों पर सन्नाटा, स्कूल बंद, सड़कों पर सिर्फ सुरक्षाबल और कंटीले तारों से जगह-जगह घेराव, एंबुलेंस तक चलने में दिक्कत आ रही है और ये अपने चैनल में बताते हैं कि कश्मीर में हालात सामान्य हैं. अगर ऐसी हड़ताल की स्थिति सामान्य ही होती है तो क्यों ये चैनल वाले दिल्ली में एक दिन के किसान मार्च पर भी बौखला जाते हैं? बताने लग जाते हैं कि एक दिन में व्यापार का कितना नुकसान हुआ. यहां हड़ताल को डेढ़ महीने से ज्यादा का वक्त होने जा रहा है, आप खुद ही सोच सकते हो व्यापार का किस कदर नुकसान हो रहा होगा. लेकिन भारतीय मीडिया को यह क्यों नहीं दिखता है? क्योंकि वे सब मोदी को खुश करने में लगे हैं" – उसने कहा.

भारतीय मीडिया के बड़े हिस्से की कश्मीर रिपोर्टिंग को लेकर कश्मीरियों के मन में भयानक गुस्सा है जिसके कई अनुभव मुझे हुए. उन्हें लगता है कि मोदी सरकार ने अनुच्छेद 370 हटाकर राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ (आरएसएस) का एजेंडा पूरा किया है.

"लेकिन ये भारतीय मीडिया क्यों सबकुछ जानकर भी झूठ और भ्रम का कारोबार कर रही है. अगर यही करना है तो खुद को मीडिया क्यों कहती है? जैसे सेना के जवान सिर्फ ऑर्डर फॉलो करते हैं, वैसे ही वे भी साफ कहें कि वे सिर्फ मोदी सरकार के आदेशानुसार कार्यक्रम चलाते हैं" – एक कश्मीरी शोधकर्ता ने कहा.

कश्मीर में मानवाधिकार उल्लंघन, उत्पीड़न और दुर्व्यवहार किए जाने की हज़ारों कहानियां हैं. एमनेस्टी और जम्मू-कश्मीर कोलिशन फॉर सिविल सोसायटी जैसी मानवाधिकार पर काम करने वाली संस्थाएं अपनी रिपोर्टों में सुरक्षाबलों की बर्बरता का जिक्र करती रही हैं. जम्मू कश्मीर के विशेष राज्य का दर्जा खत्म करने के बाद घाटी में उत्पीड़न और मानवाधिकार उल्लंघन की बात सबसे पहले जम्मू और कश्मीर पीपुल्स मूवमेंट (जेकेपीएम) की युवा कश्मीरी नेता शहला राशिद ने उठायी. शहला के पहले किसी ने भी खुलकर सुरक्षाबलों द्वारा कश्मीरियों को टॉर्चर किए जाने की बात नहीं की. स्थानीय लोगों के मुताबिक इसके दो कारण हैं. पहला, इंटरनेट और फोन बंद

होने की वजह से घाटी से संपर्क करना मुश्किल है. दूसरा, सुरक्षा के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर स्थानीय पत्रकार उत्पीड़न की कहानियां लिखने व बताने में हिचकिचाते हैं.

जुल्म की कहानियां

घाटी के कई क्षेत्रों में लोगों ने बताया कि सुरक्षाबल ग्रामीणों पर जुल्म ढहा रहे हैं. नौजवान लड़कों को बुरी तरह से पीटा जा रहा है. यातनाएं दी जा रही हैं. दक्षिण कश्मीर के ग्रामीण इलाके में रहने वाले एक व्यक्ति ने बताया, "रात में गांव को सुरक्षाबलों ने घेर लिया. लगभग हर घर से लड़कों को निकालकर सुरक्षाबलों ने राउंडअप किया. कुछ लड़कों को उनके गांव से दूर दूसरे बाहरी क्षेत्र में ले जाया गया. वहां दूसरे गांवों के लड़के भी थे. उन्हें लाठी से पीटा गया. उनके गुप्तांगों में मिर्च रगड़ी गयी. जब वे बेहोश हो जाते तो उन्हें होश में लाने के लिए बिजली का करंट दिया जाता."

एक अन्य व्यक्ति ने साथी पत्रकार को बताया, "जब वे [सुरक्षाबल] हमें टॉर्चर करते थे, हम बस यही चाहते थे कि वे हमें गोली मार दें. दर्द इतना था कि हम अल्लाह-ताला से गुजारिश करते थे कि वे हमें इससे मुक्ति दें." उसने बताया कि सेना के जवान उनसे पत्थरबाज़ों के नाम पूछते थे. "मैं उनसे चीख-चीखकर कहता रहा कि मैं मासूम हूं. पत्थर नहीं फेंकता, पर वे नहीं सुने. जब चीखता तो वे मुंह भी बंद कर देते कि आवाज़ बाहर न जाए," उसने बताया.

ये लड़के और इनका परिवार अपनी पहचान किसी भी सूरत में जाहिर नहीं होने देना चाहते. वे तस्वीर खींचे जाने से घबराते हैं. उन्हें भय है कि अगर किसी भी तरह सुरक्षाबलों को यह मालूम लग गया कि उन्होंने टॉर्चर के बारे में मीडिया को बताया है तो समूचे परिवार पर भयंकर आफ़त आ सकती है. मैं सेना और सरकार के अधिकारियों से इन दावों की पड़ताल करने में असफल रहा. सेना ने कुछ प्रतिष्ठित अंतराष्ट्रीय संस्थानों को घाटी में कश्मीरियों के साथ टॉर्चर के सिलसिले जवाब में कहा, "सेना पर लगाये जा रहे इस तरह के आरोप तथ्यहीन और भ्रामक हैं." राज्य के गवर्नर सत्यपाल मलिक ने भी मानवाधिकार उल्लंघन और सेना द्वारा उत्पीड़न की वारदातों का सिरे से खंडन किया है.

18 अगस्त को जेकेपीएम की नेता शहला राशिद ने कश्मीर के हालात पर एक ट्विटर थ्रेड लिखा. उसके एक ट्वीट में उन्होंने लिखा कि सेना के जवान रात को घरों में घुसकर लड़कों को उठा रहे हैं. घर की तलाशी ली जा रही है. जानबूझकर चावल को तेल के साथ मिला दिया जा रहा है.

अगले ट्वीट में शहला ने दक्षिण कश्मीर के शोपियां में सेना के कैंप में कश्मीरी लड़कों के उत्पीड़न का जिक्र किया. शोपियां में चार लड़कों को सेना के कैंप में बुलाया गया और उन्हें

यातना दी गई. उन लड़कों के करीब माइक रखा था ताकि उनकी चीखें सुनकर इलाके के लोग डरें. इसके घटना के बाद से क्षेत्र में भय का माहौल है.

ट्वीट से आहत होकर सुप्रीम कोर्ट के अधिवक्ता आलोक श्रीवास्तव ने शहला पर "भारतीय सेना की छवि खराब करने की कोशिश" करने के लिए मुकदमा दर्ज करवा दिया. 6 सितंबर को दिल्ली पुलिस की स्पेशल सेल ने शहला के ऊपर भारतीय दंड संहिता की धारा 124-A (राजद्रोह), 153-A (धर्म, समुदाय, जन्म स्थान, भाषा आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच वैमनस्यता) और 153 (दंगा भड़काने की कोशिश) के तहत मामला दर्ज किया. फिलहाल शहला राशिद को दिल्ली की पटियाला हाउस अदालत से अंतरिम राहत मिली हुई है.

कश्मीरियों को शाह फैसल और शहला राशिद जैसे नए नेताओं से ज्यादा उम्मीद नहीं है. जनसंचार के माध्यम बंद होने के कारण उन्हें पता भी नहीं है कि राजनीति में क्या घट रहा है. पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पीडीपी) के एक उम्रदराज कार्यकर्ता ने बताया, "शहला ने गलत कुछ भी नहीं लिखा. सेना, सीआरपीएफ, पुलिस और एजेसिंयों ने हमारा जीना मुहाल कर दिया है. अभी वे लड़कों को उठाएंगें, उन्हें टॉर्चर करेंगे तो वो बंदूक ही उठाएगा. बुरहान को इन्होंने [सुरक्षाबलों] ऐसे ही तैयार किया था."

अल्लाह मेहरबान तो डॉक्टर निगहबान

कथित टॉर्चर पीड़ितों को परिवार अस्पताल ले जाने से भी बचते है. परिवारों के मुताबिक ग्रामीण अस्पतालों में पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं. बेहतर इलाज के लिए श्रीनगर जाना पड़ता है. कश्मीर में कॉमर्शियल गाड़ियां पूरी तरह से ठप हैं. पीड़ितों को अस्पताल न ले जाने का उससे भी महत्वपूर्ण कारण है कि अस्पताल सुरक्षाबलों और एजेंसियों की सख्त निगरानी में हैं. पीड़ितों का इलाज ज्यादातर घर पर ही हो रहा है. मोहल्ले-टोले के जान पहचान के डॉक्टर बहुत आग्रह के बाद घर आकर ही मरीज़ को दवा दे रहे हैं.

एक सरकारी अस्पताल डॉक्टर ने बताया कि दवाओं का बहुत कम स्टॉक बचा है. "वायरल बुखार को एक दो दिन टाला जा सकता है पर वे मरीज जो गंभीर रूप से घायल हैं, उनके लिए लाइफ सेविंग ड्रग्स जरूरी है, उसे टाला नहीं जा सकता,"

डॉक्टर ने बताया. गवर्नर सत्यपाल मलिक लगातार दावा कर रहे हैं कि घाटी में दवाइयों की पर्याप्त सुविधा है. डॉक्टर ने गवर्नर के दावे पर टिप्पणी करने से इनकार कर दिया. उन्होंने कहा, "आप पत्रकार हो. अपनी तहकीकात कर लो."

पत्रकार साथी ने मुझे बताया कि श्रीनगर के ज्यादातर सरकारी अस्पताल खाली पड़े हैं. मैं श्रीनगर के श्री महाराजा हरि सिंह सरकारी अस्पताल पहुंचा. वहां सारे बेड खाली पड़े थे. हमने

अस्पताल के कर्मचारियों से बात करने की कोशिश की. उन्होंने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया. थोड़ा आग्रह करने पर उन्होंने एक प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय अखबार के लिए लिखने वाले मेरे साथी को डॉक्टर से बात करने का मौका दिया. यह मौका उन्हें अंतरराष्ट्रीय और प्रतिष्ठित प्रकाशक होने की वजह से मिला था. मैं भारतीय मीडिया की छवि का नुकसान झेल रहा था.

"फिलहाल हमारा ज़ोर आपातकालीन सेवाओं के लिए दवाएं स्टॉक करने पर है. दवाइयों का स्टॉक तेजी से खत्म हो रहा है. मरीज़ों को न चाहते हुए भी लौटाना पड़ रहा है. हमारी एंबुलेंस सेवा भी लगभग ठप सी हो गयी है. हालात बिना सामान्य हुए हमें कोई रास्ता नज़र नहीं आता," डॉक्टर ने पत्रकार साथी को बताया.

होटल की ओर लौटने के रास्ते में श्रीनगर के एक प्राइवेट अस्पताल के बाहर कई गाड़ियां खड़ी दिखीं. यह मैटरनिटी अस्पताल था. ज्यादातर गर्भवती महिलाएं यहां भर्ती थीं. एक महिला जिसकी उम्र 30 साल थी, उसने कहा, "अल्लाह का शुक्र है कि मैं जिंदा हूं. सुरक्षाबल एंबुलेंस तक को नाकों से पार नहीं होने दे रहे थे. हमारे पति ने उन्हें कर्फ्यू पास दिखाया, फिर भी नहीं माने." महिला की सास ने बताया कि सुरक्षाबलों से जब वे एंबुलेंस को जाने देने के लिए निवेदन कर रहीं थीं तो एक जवान ने उनके मुंह पर कर्फ्यू पास फेंकते हुए कहा, "जाओ, घर में डिलीवरी करो."

उस प्राइवेट अस्पताल के डॉक्टर ने कहा, "हमारे यहां जो मरीज़ पहुंच रहे हैं उन पर सच कहूं तो अल्लाह की ही मेहरबानी समझो. बहुत सख्त निगरानी लगा रखी है सुरक्षाबलों ने. हम डॉक्टरों के लिए सरकार ने कर्फ्यू पास जारी किया था, उसकी कोई कद्र नहीं है. नाकों पर कर्फ्यू पास दिखाने के बावजूद जाने नहीं देते."

अस्पताल के एक अधिकारी ने बताया कि वे जरूरी दवाओं का इंतज़ाम करने की पूरी कोशिश कर रहे हैं. "अगर अगले चार-पांच दिनों में हम जरूरी दवाओं का बंदोबस्त नहीं कर सकें तो हमें अस्पताल की कुछ सेवाएं बंद करनी पड़ जाएंगी," अधिकारी ने बताया.

हिरासत और गिरफ्तारी

घाटी की ज्यादातर राजनीतिक शख्सियतों को पुलिस ने नज़रबंद कर रखा है. जम्मू कश्मीर पुलिस ने उन्हें कर्फ्यू के मद्देनज़र सुरक्षा का हवाला देकर पुलिस हिरासत में लिया है. जम्मू और कश्मीर के दो पूर्व मुख्यमंत्रियों (उमर अब्दुल्ला और महबूबा मुफ्ती) को पुलिस हिरासत में रखा गया है. नेशनल कॉन्फ्रेंस के वरिष्ठ नेता और पूर्व मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला को पहले पुलिस ने हाउस अरेस्ट में रखा. फिर 15 सितंबर को उन पर पब्लिक सेफ्टी एक्ट (पीएसए) लगा दिया.

यह विडम्बना ही है कि पीएसए कानून को 1978 में फारूक अब्दुल्ला के पिता शेख अब्दुल्ला लेकर आये थे. आज खुद फारूक अबदुल्ला इस कानून की चपेट में आ गये हैं. गुपकार रोड स्थित फारूक अब्दुल्ला के आवास को सब-जेल में तब्दील कर दिया गया है. वहीं दूसरी तरफ उमर और महबूबा को हरि निवास में रखा गया है. मीडिया रिपोर्टों के मुताबिक डल झील के किनारे सेन्टॉर लेक व्यू होटल में तकरीबन 200 नेताओं को हिरासत में रखा गया है. इसके अलावा कुछ नेताओं को उत्तर प्रदेश की जेलों में भी ट्रांसफर किया गया है. श्रीनगर में हिरासत में लिए गये नेताओं के परिवारों को कुछ औपचारिकताएं पूरी करने के बाद मिलने की इज़ाज़त मिलती है. परिवार के सदस्यों के अलावा किसी अन्य को मिलने की इजाज़त नहीं है.

पत्रकारों के लिए राजनीतिक बंदियों के बारे में सूचना लेने का एक ही ज़रिया है- उनके परिवार. मैं शेर-ए-कश्मीर इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस सेंटर पहुंचा. वहां बीस-पच्चीस लोगों की भीड़ जमा थी. यह राजनीतिक बंदियों के परिवारों के सदस्य थे. मैं उनमें से कई परिवारों से बात करने की कोशिश करता रहा, लेकिन वे मुझे भारतीय पत्रकार जानकर बात करने से बचते रहे. एक पूर्व पीडीपी विधायक के दामाद ने बताया कि उनके ससुर को 5 सितंबर की देर शाम को पुलिस ने हिरासत में लिया था.

"हमें सिर्फ ये बताया गया कि शहर में कर्फ्यू है और इनकी सुरक्षा के मद्देनज़र इन्हें हिरासत में लिया जा रहा है," पूर्व पीडीपी विधायक के दामाद ने बताया. "बहुत दिनों तक परिवार को उनसे [विधायक] मिलने नहीं दिया जा रहा था. एक महीने से ज्यादा का वक्त बीतने के बाद उन्हें पंद्रह मिनट के लिए मिलने का वक्त दिया गया. वे शांत पड़ गये हैं. अपना ज्यादा समय कुरान और किताबें पढ़कर बिता रहे हैं."

जब मैं शेर-ए-कश्मीर इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस सेंटर के बाहर की कुछ तस्वीरें लेने लगा तभी एक सीआरपीएफ के जवान चीखा, "फोटो मत खींचो. क्या दिक्कत है आपको? किनसे मिलने आए हैं आप?" कहते हुए वह करीब आ गया. मैंने उसे अपना नाम बताकर प्रेस कार्ड दिखाया. दिल्ली का पहचान पत्र देखकर उसका रूख थोड़ा नरम हुआ. उसने कहा, यहां सब ठीक है. शांति है. लोग खुश हैं. क्यों आप लोग यहां माहौल खराब करने आते हैं?" गेट के बाहर खड़े राजनीतिक बंदियों के परिजन मेरी ओर देखने लगे. "हां, बिल्कुल, यहां सब कुछ ठीक है. आप तो दिखाते ही हो कि यहां सबकुछ नॉर्मल है," राजनीतिक बंदियों के परिजनों में से किसी एक ने धीमे स्वर में कहा.

राजनीतिक अनिश्चय के बारे में कश्मीरियों की आम समझ बनती दिख रही है कि अनुच्छेद 370 खत्म करके भारत ने दुनिया को यह संदेश दे दिया है कि वह एक साम्राज्यवादी ताकत है और कश्मीर उसका उपनिवेश है. राजबाग इलाके में एक शख्स ने कहा, "कश्मीरियों ने वोट दिया, नेता चुना. भारत और कश्मीर के बीच जो विशेष कॉन्ट्रैक्ट संविधान में लिखा था, उसे ही भारत ने खत्म कर दिया. तो अब कौन सा नेता बचा? अच्छा हुआ कि हम कुछ कश्मीरी जो भारत में

तमाम खामियों के बावजूद भरोसा रखते थे, उस भ्रम को तोड़ दिया. अब चीज़ें स्पष्ट हैं- आर या पार."

"जिस पीडीपी के साथ भाजपा ने सरकार बनायी, उसके नेता को भी नहीं छोड़ा. सब हिरासत में हैं. पीडीपी, नेशनल कॉन्फ्रेंस सबने भारत के साथ मिलकर कश्मीरियों के साथ मज़ाक किया," एक अन्य व्यक्ति ने जोड़ा. एक तीसरे व्यक्ति ने कहा, "जब ये प्रो-इंडिया रहकर अपनी राजनीति करने वाले नेता ही उनके [भारत] न रहे तो बाकी कश्मीरियों की बात तो अब छोड़ ही दो. यहां हर एक घर ज्यादतियों से प्रभावित है, मरहम लगाने की जगह फौज़ के बल पर कश्मीर को कब्जे में करना चाहता है भारत."

नब्बे के दशक की वापसी?

कश्मीर की राजनीति में बने वैक्युम को पूरा कर रहे हैं मिलिटेंट. लोगों में मिलिटेंट्स को लेकर सहानुभूति का भाव है. ऐसा इसलिए क्योंकि लोगों को लगता है कि नेताओं ने बहुत सारे राजनीतिक पैंतरे अपनाये, लेकिन उसका कोई फायदा नहीं हुआ. कश्मीरी उन मिलिटेंट्स को "फ्रीडम फाइटर्स" बताने से गुरेज़ नहीं करते. कश्मीर में यह एक बड़ा फर्क आया 5 अगस्त के बाद.

मैं पहले भी कश्मीरियों से मिलिटेंसी को लेकर उनकी राय लेता रहा हूं. कभी उन्हें एक स्वर में मिलिटेंसी को लेकर समर्थन देते नहीं सुना. वे सुरक्षाबलों द्वारा किये जा रहे उत्पीड़न की बात कहते. वे उन स्थितियों का जिक्र करते कि कैसे सुरक्षाबलों की बर्बर कार्रवाई लड़कों को हथियार उठाने पर मजबूर करती है. इस बार मैंने महसूस किया कि कश्मीरी अवाम राजनीतिक वादाखिलाफियों और अत्याचार से हताश हो चुकी है.

श्रीनगर के सौरा में अनुच्छेद 370 खत्म किए जाने के खिलाफ लगातार विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं. उन प्रदर्शनों में "वन सॉल्यूशन, गन सॉल्यूशन-गन सॉल्यूशन" जैसे नारे लगाये गये हैं. दुकानों के शटर और दीवारों पर बुरहान वानी के पोस्टर लगाये गये हैं. श्रीनगर के कई इलाकों में मैंने बुरहान को संबोधित करने वाले संदेश दीवारों और हाइवे पर लिखे देखे. कुछ जुमले हर बातचीत में रह रह कर आ रहे हैं- 'इंडियन ऑक्युपेशन इन कश्मीर', 'आज़ादी', 'जुल्म', 'इंडियन मीडिया का प्रौपोगैंडा', 'झूठ', 'आर या पार' आदि. वे कहते हैं, "जो करना है एक बार में करो. धीरे-धीरे मारने से बेहतर है एक बार में ही उड़ा दो."

प्रेस क्लब में शोपियां के एक स्थानीय पत्रकार ने बताया कि उनके सूत्रों की जानकारी के मुताबिक दक्षिण कश्मीर के कई इलाकों में मिलिटेंट्स ने लोगों से शांति बनाये रखने को कहा है. कश्मीर के अलग-अलग इलाकों में लोगों से बातचीत करते हुए लगा कि वे भीतर से बहुत भरे हैं. बहुत कुछ अभिव्यक्त करना चाहते हैं लेकिन उन्हें अभिव्यक्त करने नहीं दिया जा रहा है.

एक साथी पत्रकार इस हालात को कुछ यूं बयां करते हैं, “कश्मीरी फटने का इंतज़ार कर रहे हैं.”

कश्मीर में जिस तरह के हालात बने हुए हैं, डर है कि कहीं कश्मीर वापस नब्बे के दौर में न लुढ़क जाये.

आपकी बात

एक मां के नाम उसके बेटे का ख़त, जो कभी पहुंचा नहीं!

मेरे फ़ोन पर चमकते हुए अज्ञात नंबर को मैंने क्षेत्र कोड से पहचान लिया था। मुझे पता था कि वो मेरी माँ है। वो बाज़ार गयी थी (जो कि निस्संदेह बंद था) क्योंकि मेरी छोटी बहन को चॉकलेट चाहिए थी। काश मैं उसे ये बता पाता कि हालात ऐसे हैं कि कश्मीरी बच्चों को चॉकलेट से ज़्यादा पेलेट मिलते हैं।

चौदह दिन के बाद, पहला वाक्य जो मेरी माँ ने फ़ोन पर बोला, वो था, "सिअब जान ओ, तचे चुक्का ठीक, ज़ुव हा वनडाई, तचातीआ तचातीआ हा एसेस करान काठ करहा बे तचे सीट."

इसका उनुवाद करना मुश्किल होगा, क्योंकि ये केवल शब्द नहीं हैं भावनाएँ हैं, फिर भी मैं पूरी कोशिश करूँगा: "ओ, मेरे प्यारे बेटे, क्या तुम अच्छे हो? तुम पर आने वाली सारी मुसीबतें मैं अपने पर ले लूँ। मैं बहुत निराश हो रही थी क्योंकि मुझे नहीं पता था कि मैं कब तुम्हारी आवाज़ सुन सकूंगी।"

क्योंकि वह हमारा लैंडलाइन या फिर एसटीडी/पीसीओ बूथ नहीं था, मैंने सुझाव दिया कि मैं उन्हें फ़ोन करता हूँ क्योंकि मुझे पता था कि हम देर तक बात करेंगे।

हमने मेरे छोटे भाई फैज़ल के बारे में बात की जो इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है। मेरी माँ उसके लिए बहुत परेशान थी क्योंकि वो हाल ही में परिवार से अलग और घर से दूर गया है। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुम रोज़ फैज़ल को फ़ोन करते हो? उसको अकेला मत महसूस होने देना, उससे जरूर पूछना उसे कुछ चाहिए तो नहीं, कुछ जरूरत हो तो बताये", और वो रो पड़ी।

इतने दिनों तक जब मैं अपने परिवार से संपर्क नहीं कर पा रहा था तब मैंने श्रीनगर के एक प्रसिद्ध रेडियो स्टेशन को संपर्क किया। वो रेडियो स्टेशन राज्य से बाहर रह रहे उन कश्मीरी लोगों के सन्देश ले रहा था जो अपने परिवार वालों को पैगाम भेजना चाहते थे।

इसकी संभावना थी कि मेरे परिवार से कोई भी वो सन्देश नहीं सुन पाए पर मुझे विश्वास था कि हमारे मोहल्ले से कोई न कोई तो ज़रूर सुन ही लेगा। और ऐसा ही हुआ। बात करते वक़्त माँ ने कहा, "अंकल ने बताया कि तुम रेडियो पर थे. मुझे तो नई ज़िन्दगी मिल गयी जब मुझे तुम्हारा सन्देश मिला कि तुम ठीक हो।"

इन 14 दिनों में मेरी सबसे बड़ी चिंता थी मेरी माँ की दवा। वो गठिया की मरीज़ हैं और उन्हें नियमित रूप से दवा लेने की ज़रूरत है, नहीं तो उनका दर्द और बढ़ जाता है। यही विचार मुझे दिन भर परेशान करता रहता था। मैंने माँ से उनकी दवाइयों के बारे में पूछा।

उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने दवाई का पर्चा एक एम्बुलेंस चालक को, जो कि मरीज़ों और अन्य मेडिकल स्टाफ को हमारे यहाँ से श्रीनगर ले जाता है, उसे सौंप दिया था। मुझे नहीं पता था कि मैं इस

पर क्या प्रतिक्रिया दूँ। हालाँकि मैं खुश था कि उन्हें अपनी दवाइयाँ मिल गयी थीं पर जैसे मिली थीं, उससे मैं स्तब्ध रह गया।

ईद-उल-अदहा क़ुर्बानी के लिए मशहूर है। जितना मुझे याद है, कोई भी ईद ऐसी नहीं थी जब हमने भेड़ या बकरी की क़ुर्बानी नहीं दी हो। मगर माँ ने कहा कि यह पहली बार था जब हम भेड़ नहीं ख़रीद पाए। इसके दो कारण थे – पहला, कर्फ़्यू के चलते गड़रिये हर गली-कूचे में नहीं पहुँच पाए और दूसरा, ईद पर मेरे पिताजी की तनख्वाह ही नहीं आई।

मैं परिवार के अन्य सदस्यों और रिश्तेदारों के बारे में पूछने लगा। कोई नहीं आया था और उनके बारे में कोई ख़बर भी नहीं थी। माँ को मेरी 80 साल की नानी की हालत के बारे में भी नहीं पता है। ईद से एक दिन पहले, नाज़िर साहिब को दिल में दर्द उठा और उन्हें पास ही के अस्पताल में इमरजेंसी में ले गए। उन्हें दिल का दौरा पड़ा था, मगर उनकी बहन, मेरी फूफी को इसका पता ही नहीं चला। चार दिन बाद, उनका बेटा माजिद, किसी तरह चरारी शरीफ़ पहुँचा और उसने मेरी बुआ और फूफा को बताया। मेरी फूफी रो पड़ीं।

मेरा शहर, चरारी शरीफ़, वही जगह है जो मई 1995 में ख़बरों में था, जब सेना और उग्रवादियों के बीच तीन महीने चली मुठभेड़ के दौरान पुरा शहर जल कर राख हो गया था। क़रीब 10,000 लोगों को बस्ती छोड़ कर जाना पड़ा और कई महीनों बाद जब लौट कर आए तो देखा कि उनके घर ध्वस्त हो चुके हैं, इसमें मेरा घर भी शामिल था।

ईद से पहले, मेरा एक दोस्त दिल्ली से अपने घर श्रीनगर गया, बिना यह जाने कि वह हवाईअड्डे से अपने घर कैसे जाएगा। जब वह श्रीनगर उतरा और उसने वहाँ मौजूद इकलौते टैक्सी चालक को उसे घर छोड़ने के लिए पूछा तो टैक्सी चालक बोला, "30 किलोमीटर तो भूल जाइये, ज़्यादा से ज़्यादा मैं आपको चनापोरा बाइपास (हवाईअड्डे से 6 किलोमीटर दूर) छोड़ सकता हूँ और उसके मैं 1500 रुपये लूँगा."

मैंने उसके हाथों एक बहुत ज़रूरी सन्देश अपने परिवार को भेजा था पर वो उन तक कभी पहुँचा ही नहीं। पहले दिन उसने मेरे घर के नज़दीक तहसील कार्यालय जाने की कोशिश की जहाँ सिपाही तैनात थे, उन लोगों ने उसे पार नहीं जाने दिया। दूसरे दिन भी वह असफ़ल रहा। ईद के दिन, उसे उम्मीद थी कि वह मोर्चाबंदी पार कर मेरे घर के नज़दीक विशाल मस्जिद इलाके में पहुँच जाएगा, मगर उसे और उसके पिताजी को फिर एक बार रोक दिया गया।

मेरा सन्देश 800 किलोमीटर दूर, दिल्ली से कश्मीर तक तो पहुँच गया मगर मेरी माँ तक नहीं। मैं नहीं समझ पाया कि क्यों एक बेटे का सन्देश उसकी माँ तक पहुँचने से रोका गया। क्या वो देशद्रोही सन्देश था? क्या उससे क़ानून और व्यवस्था भंग हो सकती थी?

हालाँकि मैं खुश हूँ कि अंततः मैं अपनी माँ से बात कर पाया पर जिस तरह सरकार ने इस मसले को संभाला है, ऐसा लगता है कि बहुत सी माँएं अपने बेटों को जल्दी नहीं देख पाएँगी। हज़ारों हिरासत में हैं, और पेलेट और गोलीबारी जारी है। अंधकार अंतहीन जान पड़ता है, मगर हमने उम्मीद को जकड़ा हुआ है,

उम्मीद हमें धोखा नहीं दे सकती। यह आलम है कि बाकी मुल्क ने हमसे आँखें फेर ली हैं और एक बहुत बड़ा हिस्सा कश्मीर के हालात के या तो खुलेआम या चुपचाप मज़े ले रहा है।

कुछ मुट्ठी भर दोस्तों ने मुझे सन्देश भेजा और मैं उनका आभारी हूँ परन्तु दिल्ली में बहुत से दोस्तों की आपराधिक चुप्पी ने मुझे हैरान कर दिया। बहुतों को कश्मीर के लिए 'दुःख' महसूस हुआ लेकिन उन्होंने मुझे अपनी एकजुटता प्रकट करते हुए एक भी सन्देश नहीं भेजा। अगर वो मुझे कह देते कि "हम तुम्हारे साथ खड़े हैं" या "फ़िक्र मत करो, सब ठीक हो जाएगा" या मुझे पूछ लेते "क्या तुम्हारी अपने परिवार से बात हुई?" या "क्या तुम्हें कोई मदद चाहिए", तो ये मुश्किल समय थोड़ा आसान हो जाता।

(कश्मीर ख़बर से साभार)